दृष्टि The Vision

एडिटोरियल

(संग्रह)

नवंबर भाग-2, 2020

दृष्टि, 641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
फोन: 8750187501
ई-मेल: online@groupdrishti.com

अनुक्रम

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम 5

- महामारी और शहरी नियोजन 5
- बाँध सुरक्षा और सरकार के प्रयास 7
- हाथ से मैला ढोने (मैनुअल स्कैवेंजिंग) की प्रथा का उन्मूलन 10
- शासन के अंगों के बीच नियंत्रण और संतुलन 13

आर्थिक घटनाक्रम 16

- कुपोषण और महामारी 16
- कृत्रिम बुद्धिमत्ता और कृषि 18

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम 21

- क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी और भारत 21
- खाड़ी देश: बदलता परिदृश्य और संभावनाएँ 23

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी 27

- विद्युत चालित वाहनों का विकास 27

नोट :

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण **30**

➢ जैव विविधता शासन 30

➢ जलवायु परिवर्तन से निपटने में वनों की भूमिका 32

सामाजिक न्याय **36**

➢ भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी 36

➢ अंतरधार्मिक विवाह और व्यक्तिगत स्वतंत्रता 39

दृष्टि The Vision

नोट :

नोट :

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम

महामारी और शहरी नियोजन

संदर्भः

हाल ही में प्रधानमंत्री ने COVID-19 महामारी से सीख लेते हुए भविष्य में शहरों और कस्बों को स्वस्थ एवं रहने योग्य बनाने के लिये शहरी नियोजन तथा विकास पर नए सिरे से विचार करने का आह्वान किया है। प्रधानमंत्री ने सुरक्षित शहरी जीवन यापन के लिये लोगों की मानसिकता के साथ प्रक्रियाओं और प्रचलित प्रथाओं में बदलाव करने पर ज़ोर दिया। गौरतलब है कि COVID-19 महामारी की शुरुआत के पहले 100 दिनों में विश्व में इसके संक्रमण के कुल मामलों में से 15% शीर्ष 10 प्रभावित शहरों में देखे गए थे। इसी प्रकार भारत के घनी आबादी वाले शहरों से प्राप्त आँकड़ों से पता चलता है कि शुरुआत में शहरी क्षेत्रों में इस महामारी से प्रभावित लोगों की संख्या में काफी वृद्धि देखी गई और यहाँ से यह संक्रमण धीरे-धीरे कस्बों तथा छोटे शहरों की तरफ फैल गया। पिछले दो दशकों के दौरान भारत के तीव्र विकास, बढ़ते शहरीकरण तथा ग्रामीण क्षेत्र से पलायन के कारण शहरी क्षेत्रों की आबादी कई गुना बढ़ गई है, हालाँकि अनियोजित शहरीकरण एवं किफायती आवासों की कमी के कारण अधिकांश शहरी आबादी के लिये कई प्रकार की संक्रामक बीमारियों का खतरा बना रहता है जो कभी भी एक नई महामारी का रूप ले सकता है।

शहरीकरण और महामारीः

- वर्तमान में विश्व के कई शहर वर्ष 1930 के दशक की महामंदी के बाद सबसे बड़े आर्थिक संकट का सामना कर रहे हैं।
- ऐसी बहुत से चीजें और गतिविधियाँ जो शहरी जीवन का प्रतीक हुआ करती थीं, आज उन पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ है। इस महामारी के कारण सामुदायिक समारोहों, खेल गतिविधियों, शिक्षा और मनोरंजन आदि की प्रक्रिया में भारी बदलाव देखने को मिला है।
- अप्रैल 2020 तक विश्व में COVID-19 के 74% मामले ऐसे देशों (जैसे- अमेरिका, चीन, रूस, इटली, स्पेन आदि) से थे जहाँ की 60-70% आबादी शहरी क्षेत्रों में रहती है।
- अप्रैल माह की शुरुआत में गैर-महानगरीय क्षेत्रों में COVID-19 के कारण होने वाली मौतों की दर 0.43 (प्रति 100,000 आबादी पर), छोटे महानगरों में 0.72, मध्यम आकार के महानगरों में 0.85 और बड़े महानगरों में 0.94 रही।
- भारत में भी अप्रैल तक COVID-19 से सबसे अधिक वही राज्य प्रभावित हुए थे जिनमें शहरीकरण सबसे अधिक है [महाराष्ट्र (45% शहरीकरण), गुजरात (43%), दिल्ली (98%), राजस्थान (25%), मध्य प्रदेश (28%), तमिलनाडु (48%), उत्तर प्रदेश (22%)]।
- मुंबई, दिल्ली, बंगलूरू और चेन्नई जैसे शहरों में COVID-19 संक्रमण के तीव्र प्रसार का मुख्य कारण सघन शहरी आबादी और लोगों द्वारा सोशल डिस्टेंसिंग के मानदंडों का सही से पालन न कर पाना बताया गया है।

शहरीकरण में व्याप्त पक्षपातः

- विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, वर्ष 2007 में पहली बार विश्व के शहरों और कस्बों में रहने वाली आबादी का आँकड़ा 50% को पार कर गया।
- अच्छे और किफायती आवासों की व्यवस्था को एक स्वस्थ और स्थायी शहर के आधार के रूप में देखा जाता है परंतु भारतीय शहरों के मामले में बड़े पैमाने पर इसकी अनदेखी की गई है।
- शहरी क्षेत्रों में प्रवासी श्रमिकों और समाज के आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग के लिये व्यवस्थित और वहनीय रेंटल हाउसिंग (Rental Housing) व्यवस्था महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
- एक रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 1961 से वर्ष 2000 के बीच मुंबई में हुए आवासीय निर्माण में मात्र 5% रेंटल हाउसिंग या किराये के आवासों को जोड़ा जा सका है और इसमें से अधिकांश में निजी क्षेत्र का निवेश रहा है।

नोट :

- राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में अवस्थित बस्तियाँ (Slum) इसके कुल क्षेत्रफल के मात्र 0.6% हिस्से (दिल्ली मास्टर प्लान, 2021 में आवासीय भूमि का 3.4%) में फैली हुई हैं, हालाँकि इतने छोटे क्षेत्रफल में दिल्ली की लगभग 11-15% आबादी (एक अनुमान के अनुसार, यह आँकड़ा 30% तक भी हो सकता है) दशकों से निवास कर रही है।
- वर्ष 2017 के एक आँकड़े के अनुसार, दिल्ली में लगभग 31 लाख कारों की पार्किंग के लिये 13.25 वर्ग किमी. भूमि निर्धारित की गई, जो कि कुल आवासीय क्षेत्रफल का 5% है।
- शहरी क्षेत्र में वहनीय आवासों के अभाव में एक बड़ी आबादी को गैर-कानूनी रूप से स्थापित झुग्गी बस्तियों या असुरक्षित क्षेत्रों में रहना पड़ता है, जहाँ स्वच्छ जल, वायु आदि जैसी मूलभूत ज़रूरतें पूरी नहीं हो पातीं।
- विशेषज्ञों के अनुसार, ऐसे संवेदनशील क्षेत्रों में कई मूलभूत सुविधाओं के बगैर रह रही आबादी में अनेक प्रकार की संक्रामक बीमारियों के फैलने का खतरा बढ़ जाता है।

आवासीय गरीबी (Housing Poverty):

- वैश्विक स्तर पर स्वीकार्य गरीबी को 'बुनियादी मानवीय आवश्यकताओं से वंचित रहने की स्थिति' के रूप में परिभाषित किया गया है। आवासीय गरीबी की अवधारणा भी एक गरिमापूर्ण जीवन के लिये आवासीय ज़रूरतों के बेंचमार्क पर आधारित है।
- हालाँकि आवासीय गरीबी की अवधारणा को समझने से पूर्व 'पर्याप्त आवास' (Adequate Housing) की अवधारणा को समझना आवश्यक है, क्योंकि पर्याप्त आवासों की कमी ही आवासीय गरीबी को जन्म देती है।
- इसके तहत बिजली, पानी की आपूर्ति और स्वच्छता तथा सीवेज प्रबंधन जैसी बुनियादी सुविधाओं को भी शामिल किया जाता है।
- यह एक व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ्य रहने, रोज़गार करने तथा सामाजिक संबंध स्थापित करने की क्षमता को प्रभावित करती है।
- वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, भारतीय शहरों में लगभग 9 लाख बेघर लोग रहते हैं, जबकि लगभग 6.5 करोड़ लोग (देश की कुल शहरी आबादी का 17%) झुग्गी बस्तियों में रहते हैं।

आवासीय संकट को दूर करने हेतु पूर्व में किये गए प्रयास:

- देश की स्वतंत्रता के बाद से ही आवासीय संकट की चुनौती से निपटने के लिये सरकारों द्वारा कई योजनाओं की शुरुआत की गई है।
- वर्ष 1952 में 'औद्योगिक श्रमिकों और आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों के लिये शुरू की गई आवास योजना, 1952' देश की पहली प्रमुख आवासीय योजना थी। इस योजना का उद्देश्य औद्योगिक क्षेत्र में खदानों और कारखानों में कार्यरत ऐसे कर्मचारी जिनकी मासिक आय 500 रुपए से कम थी, को अपने भविष्य निधि से गैर-वापसी योग्य ऋण उपलब्ध कराना था ताकि उन्हें घर के निर्माण हेतु वित्तीय सहायता प्रदान की जा सके।
- इस प्रकार 'निम्न आय वर्ग आवासीय योजना, 1954' (6000 रुपए वार्षिक आय से कम वाले परिवारों के लिये) , वर्ष 1972 में 'शहरी मलिन बस्तियों का पर्यावरण सुधार' (EIUS) कार्यक्रम, वर्ष 1997 के 'राष्ट्रीय स्लम विकास कार्यक्रम' आदि योजनाओं के माध्यम से आवास के साथ-साथ कमज़ोर वर्ग के लोगों के कौशल विकास के प्रयास किये गए।
- साथ ही वर्ष 2005 के 'जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन', वर्ष 2011 की 'राजीव आवास योजना' के माध्यम से बुनियादी सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया।
- हालाँकि इनमें से कई योजनाएँ अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल रहीं और साथ ही कुछ योजनाओं के तहत निर्मित आवासों की गुणवत्ता बहुत अच्छी नहीं थी।

बढ़ती आबादी और वहनीय आवास का असंतुलन :

- वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार, भारत में लगभग 72% आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में और 28% आबादी शहरी क्षेत्रों में निवास करती थी, परंतु वर्ष 2011 की जनगणना में शहरी आबादी का आँकड़ा बढ़कर 31% तक पहुँच गया, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों की आबादी घटकर 69% रह गई, जो इस अवधि के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की तरफ हुए भारी पलायन की ओर संकेत करता है।
- हालाँकि वर्ष 2015 में विश्व बैंक (World Bank) द्वारा जारी एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में शहरी आबादी का अनुपात 31% न होकर लगभग 55.3% है।

- वर्तमान में विकासशील शहरों में लगभग 50-80% रोज़गार असंगठित क्षेत्र से संबंधित हैं, ऐसे में इन रोज़गारों से जुड़े अधिकांश लोग गुणवत्तापूर्ण महँगे आवासों का खर्च वहन नहीं कर सकते।
- वित्तीय वर्ष 2018-19 में भारत में 63.67 मिलियन शहरी और ग्रामीण परिवारों के पास पर्याप्त आवास नहीं थे।
- विश्व संसाधन संस्थान (World Resources Institute-WRI) की एक रिपोर्ट के अनुसार, वर्तमान में विश्व भर में लगभग 1 बिलियन लोग झुग्गी बस्तियों में रहते हैं। भारत में ऐसे लोगों की आबादी लगभग 152-216 मिलियन तक बताई गई है।
- वर्ष 2018 में ऐसे क्षेत्रों में लगभग 60% आबादी को पाइपलाइन के माध्यम से स्वच्छ पेय जल उपलब्ध हो सका, मुंबई की बस्तियों में रहने वाले 70% से अधिक लोगों को पानी के लिये टैंकर के सामने लाइन लगाने के बाद भी प्राप्त जल WHO के मानकों (गैर-आपातकालीन स्थितियों में प्रतिदिन 50 लीटर) के अनुरूप नहीं था।

समाधान:

- केंद्र सरकार को विश्व के अन्य देशों से सीख लेते हुए इस महामारी के पश्चात् 'एफोर्डेबल रेंटल हाउसिंग कॉम्पलेक्सेज़' (Affordable Rental Housing Complexes- ARHC) जैसी योजनाओं के माध्यम से बड़े पैमाने पर उच्च गुणवत्ता वाले वहनीय घरों के निर्माण पर विशेष ध्यान देना चाहिये।
- केंद्रीय आवास एवं शहरी विकास मामलों के मंत्रालय द्वारा केवल स्मार्ट सिटीज़ पर ही ध्यान केंद्रित न करते हुए राज्यों के साथ मिलकर संबंधित शहरों में ऐसे घरों की आवश्यकता और योजनाओं के कार्यान्वयन पर कार्य किया जा सकता है।
- वर्ष 2015 में शुरू की गई प्रधानमंत्री आवास योजना (Prime Minister Awas Yojana -PMAY) के तहत वर्ष 2022 तक 10 मिलियन घरों का निर्माण पूरा करने का लक्ष्य रखा गया है।
- देश के अधिकांश शहरों में वायु प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और पानी की गुणवत्ता संबंधी कानूनों के कार्यान्वयन में होने वाली अनदेखी संक्रामक रोगों के प्रसार का एक प्रमुख कारण रही है।
- किसी भी लोकतांत्रिक देश में संसाधनों का असमान वितरण उसके सतत् विकास के लिये एक बड़ी चुनौती बन सकता है, ऐसे में सरकार को देश के विकास के लिये समाज में फैली इस प्रकार की असमानता को दूर करने का प्रयास करना चाहिये।
- पिछले कुछ वर्षों में अनियोजित शहरीकरण और संसाधनों के अनियंत्रित दोहन से प्रदूषण जैसी समस्या तथा इसके कारण बीमारियों के प्रसार में कई गुना वृद्धि देखने को मिली है। ऐसे में सरकार को शहरों के विकास के दौरान प्राकृतिक एवं सामाजिक संतुलन बनाए रखने पर विशेष ध्यान देना होगा ।

निष्कर्ष:

अगले दो दशकों में भारत और अफ्रीका के कुछ देशों में शहरीकरण की एक बड़ी लहर देखी जा सकती है परंतु COVID-19 महामारी ने विकास की इस गति के समक्ष एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत की है। साथ ही इससे यह स्पष्ट हो गया है कि देश की अर्थव्यवस्था का इंजन माने जाने वाले शहर ऐसी महामारियों के मामले में कितने सुभेद्य हैं। पिछले एक दशक में हैजा, प्लेग और वैश्विक फ्लू महामारी जैसे संकटों के बाद अपशिष्ट जल, कचरा प्रबंधन, सामाजिक आवास और स्वास्थ्य संबंधी सुधारों के कारण इन बीमारियों में कमी आई है। ऐसे में इस महामारी के बाद सरकार को शहरीकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण सुधारों के लिये बड़े कदम उठाने होंगे।

बाँध सुरक्षा और सरकार के प्रयास

संदर्भ:

बाँध दशकों से हमारी अर्थव्यवस्था और आधुनिक जीवनशैली का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं। पिछले कुछ दशकों के दौरान बाँधों ने विश्व में उभरती नई अर्थव्यवस्थाओं को गति प्रदान करने के साथ अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा के अनुसार, चीन की यांग्त्ज़ी नदी पर बने 'थ्री गॉर्जेस डैम' के पूर्ण रूप से सक्रिय होने के बाद इसने पृथ्वी की घूर्णन गति को 0.6 माइक्रोसेकंड धीमा कर दिया था। बाँधों की यही शक्ति लोगों को प्रभावित करने के साथ भयभीत भी करती है। बाँध देश की प्रगति और समृद्धि की कुंजी तो होते हैं परंतु यदि समय-समय पर इनकी सही देख-रेख न की जाए तो यह मानव जीवन और संपत्ति के लिये एक बड़ा खतरा उत्पन्न कर सकते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में बाँधों की भूमिका:

- बाँधों की संख्या के मामले अमेरिका और चीन के बाद भारत (लगभग 5,745) का विश्व में तीसरा स्थान है।
- ऊर्जा उत्पादन के साथ ही भारत में दशकों से बाँधों ने कृषि तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था के तीव्र तथा स्थायी विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- वर्तमान में देश में उत्पादित कुल विद्युत ऊर्जा का लगभग 12.2% (लगभग 45,699 मेगावाट) जलविद्युत संयंत्रों से प्राप्त होता है।
- साथ ही देश में कृषि सिंचाईं तंत्र को मज़बूत बनाने में भी बाँध महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।
- गौरतलब है कि बाँधों के निर्माण का एक उद्देश्य बाढ़ को रोकना होता है परंतु ये बाढ़ की आवृत्ति में वृद्धि के प्रमुख कारक भी हैं।
- वर्ष 1979 में गुजरात के मोर्बी ज़िले के मच्छू बाँध आपदा में हज़ारों लोगों की मृत्यु देश में बाँधों के रखरखाव और सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिये जाने के लिये सबसे बड़ी चेतावनी थी।
- भारत में बड़ी संख्या में बाँधों की अधिक आयु को देखते हुए एक मज़बूत 'बाँध सुरक्षा नीति' को अपनाया जाना आवश्यक हो गया है।

भारत में जलविद्युत ऊर्जा का भविष्य:

- एक अनुमान के अनुसार, भारत में उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से 1,45,320 मेगावाट (छोटी पनबिजली परियोजनाओं को छोड़कर) तक विद्युत उत्पादन किया जा सकता है।
- गौरतलब है कि भारत सरकार द्वारा वर्ष 2030 तक देश में उत्पादित कुल विद्युत ऊर्जा में से 40% गैर-जीवाश्म ईंधन स्रोतों से प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है।
- हालाँकि पिछले 10 वर्षों में देश में विद्युत उत्पादन प्रणाली में शामिल पनबिजली संयंत्रों की क्षमता में मात्र 10,000 मेगावाट की वृद्धि की जा सकी है।
- साथ ही देश में सर्वाधिक बाँध वाले कई राज्यों में सिंचित क्षेत्र में भी अपेक्षित वृद्धि नहीं देखी गई है।

बाँध सुरक्षा से जुड़ी चुनौतियाँ:

- देश में एक बड़ी संख्या ऐसे बाँधों की है जिनका निर्माण बहुत पहले किया गया था, नवीन तकनीकी के अभाव में इन बाँधों में गाद जमा होने के साथ कई अन्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
- गौरतलब है कि वर्तमान में देश के कुल बाँधों में से लगभग 18% (973) बाँधों का निर्माण 50 से 100 वर्ष पूर्व किया गया था।
- साथ ही लगभग 56% बाँधों का निर्माण 25 से 50 वर्ष पूर्व किया गया था।
- बाँधों में अत्यधिक गाद के जमा होने से बाँधों में जल संग्रह करने की क्षमता कम हो जाती है और इससे अपेक्षित मात्रा में जल एकत्र करने के दौरान दीवारों पर दबाव भी बढ़ता है।
- देश में 92% बाँधों का निर्माण अंतर्राज्यीय प्रवाह वाली नदियों पर किया गया है, ऐसे में बहुत से बाँधों पर उनकी भौगोलिक अवस्थिति के विपरीत किसी दूसरे राज्य का स्वामित्व है।
- भारतीय संविधान के तहत जल और इससे जुड़े संसाधनों को राज्य सूची में रखा गया है, ऐसे में जल से संबंधित मामलों में केंद्र सरकार का स्वतंत्र हस्तक्षेप सीमित ही रहता है।

अन्य मुद्दे:

- साथ ही 'नदी बोर्ड अधिनियम, 1956' के पारित होने के इतने वर्षों बाद भी आज तक देश में एक भी नदी बोर्ड की स्थापना नहीं की गई, जो इस क्षेत्र में कार्य करने के मामले में सरकारों की राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी को दर्शाता है।

सरकार के प्रयास:

- हाल ही में केंद्र सरकार द्वारा 'बाँध पुनर्वास और सुधार परियोजना' (Dam Rehabilitation and Improvement Project- DRIP) के चरण-II और चरण-III को मंज़ूरी दी गई है।
- विश्व बैंक और 'एशियाई अवसंरचना निवेश बैंक' (Asian Infrastructure Investment Bank- AIIB) द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त इस परियोजना की कुल लागत 10,211 करोड़ रुपए है।

नोट :

- दूसरे और तीसरे चरण के कुल बजट में से 7,000 करोड़ रुपए बाहरी सहायता के रूप में विश्व बैंक और AIIB से प्राप्त होंगे, जबकि शेष 3,211 करोड़ रुपए संबंधित कार्यान्वयन एजेंसियों द्वारा प्रदान किये जाएंगे।
- केंद्र सरकार के अनुसार, यह परियोजना देश में जल सुरक्षा, भविष्य के खतरों के प्रति प्रतिक्रिया और देश भर में बाँधों के बुनियादी ढाँचे से संबंधित आपातकालीन कार्ययोजना को मज़बूत करने की दिशा एक सकारात्मक कदम है।
- गौरतलब है कि DRIP की शुरुआत केंद्रीय जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण मंत्रालय द्वारा वर्ष 2012 में 6 वर्षों की अवधि के लिये की गई थी।
- हालाँकि वर्ष 2018 में इस परियोजना की लागत 3466 करोड़ रुपए करते हुए इसे वर्ष 2020 तक बढ़ा दिया गया था।
- इस योजना के तहत अब तक 207 बाँधों की मरम्मत, बाँध टूटने के विश्लेषण, आपातकालीन कार्ययोजना की तैयारी, पेशेवर प्रशिक्षण और संस्थानों को मज़बूत करने की दिशा में कई महत्त्वपूर्ण कार्य किये गए हैं।
- वर्तमान में DRIP के 'बाँध स्वास्थ्य एवं पुनर्वास निगरानी अनुप्रयोग' (Dam Health and Rehabilitation Monitoring Application-DHARMA) कार्यक्रम के तहत देश के 18 राज्यों में 5000 से अधिक बाँधों से डेटा एकत्र किया जाता है।

DRIP का विस्तार:

- केंद्र सरकार द्वारा इस परियोजना के विस्तार के निर्णय के बाद अब इसे वर्ष 2021-31 के बीच दो चरणों में लागू किया जाएगा, जिसमें प्रत्येक चरण 6 वर्षों का होगा।
- इस परियोजना के आगामी चरण में बाँध सुरक्षा से जुड़े परिचालन अधिदेश जैसे- संरचनात्मक सुरक्षा, निगरानी, रखरखाव आदि से जुड़े प्रयासों को बढ़ावा देने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।
- जल से संबंधित अधिकार राज्यों के पास होने के बावजूद DRIP बाँधों के प्रबंधन और रखरखाव के संदर्भ में राज्यों की चिंताओं को दूर करने में सफल रहा है।
- DRIP के तहत साप्ताहिक पर्यटन, वाटर स्पोर्ट, मत्स्य पालन और सौर ऊर्जा के साथ अन्य संबद्ध गतिविधियों पर ज़ोर देते हुए बाँधों के प्रबंधन में संरचनात्मक तथा आर्थिक लचीलेपन के बीच एक आदर्श संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

बाँध सुरक्षा विधेयक, 2019:

- बाँध सुरक्षा विधेयक, 2019 को अगस्त 2019 में लोकसभा से पारित किया गया था।
- यह विधेयक देश के अलग-अलग राज्यों में स्थित बाँधों के परिचालन, रखरखाव, निरीक्षण आदि का प्रावधान करता है।
- इसके तहत बाँध सुरक्षा से संबंधित नीतियों और मानदंडों के निर्माण, बड़े बाँधों के टूटने के कारणों का विश्लेषण और इसमें आवश्यक सुधार हेतु सुझाव देने के लिये के लिये एक राष्ट्रीय बाँध सुरक्षा समिति की स्थापना की बात कही गई है।
- साथ ही बाँधों की निरंतर निगरानी, सभी बाँधों का डेटाबेस तैयार करने और बाँध प्रबंधन से जुड़ी संस्थाओं को सुरक्षा संबंधी सुझाव देने हेतु 'राज्य बाँध सुरक्षा संगठनों' (State Dam Safety Organisation- SDSOs) की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है।
- इस विधेयक के तहत दंड का भी प्रावधान किया गया है, जिसके अंतर्गत किसी व्यक्ति को अपना कार्य करने से रोकने या विधेयक के अंतर्गत जारी निर्देशों के अनुपालन से इनकार करने की स्थिति में दोषी व्यक्ति को एक वर्ष के कारावास का दंड दिया जा सकता है।

बाँध परियोजनाओं में विलंब का कारण:

- बाँधों का निर्माण मात्र एक अभियांत्रिकी उपक्रम ही नहीं है बल्कि इससे बड़े पैमाने पर सामाजिक-आर्थिक और पर्यावरणीय प्रभाव भी देखने को मिलते हैं, ऐसे में इन परियोजनाओं के लिये सरकार की अनुमति मिलने में काफी समय लग जाता है।
- बाँधों से जुड़ी अधिकांश परियोजनाएँ बहुत ही दुर्गम क्षेत्र में स्थित होती हैं ऐसे में क्षेत्र में नवीनतम मशीनरी और अन्य संसाधनों की पहुँच के लिये अवसंरचना विकास पर होने वाला खर्च इसकी लागत को बढ़ा देता है।

समाधान:

- केंद्र सरकार द्वारा मार्च 2019 में बड़ी पनबिजली परियोजनाओं को नवीकरणीय ऊर्जा का दर्जा प्रदान किया गया, जिससे इस श्रेणी की नई पनबिजली परियोजनाओं का वित्तीय प्रबंधन आसान हो गया।

नोट :

- साथ ही विद्युत अधिनियम में संशोधन के बाद वितरकों द्वारा पनबिजली परियोजनाओं से उत्पादित विद्युत की अनिवार्य खरीद भी सुनिश्चित की जा सकेगी, जिससे बाँधों के बेहतर रखरखाव के लिये वित्तीय निरंतरता सुनिश्चित की जा सकेगी।
- बाँधों की सुरक्षा कई बाहरी कारकों जैसे-परिदृश्य, भूमि उपयोग के पैटर्न में परिवर्तन, वर्षा का पैटर्न, संरचनात्मक विशेषताएँ आदि पर निर्भर करती है, ऐसे में सरकार को बाँधों के सुरक्षा तंत्र को मज़बूत बनाने के लिये इन सभी पहलुओं पर ध्यान देना होगा।
- हाल के वर्षों में जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा की अवधि और आवृत्ति में व्यापक बदलाव देखने को मिला है, ऐसे में मौसम पूर्वानुमान प्रणाली में आवश्यक सुधार के माध्यम से बाँधों के प्रबंधन तथा रखरखाव के मामले में निर्णय लेने में सहायता प्राप्त हो सकती है।
- देश में उपलब्ध संसाधनों से सभी के हित जुड़े हुए हैं परंतु स्वतंत्रता के बाद से नए राज्यों के निर्माण के साथ-साथ संसाधनों के वितरण की प्रक्रिया जटिल होती चली गई है, ऐसे में केंद्र व राज्य सरकारों को नागरिकों के हितों को देखते हुए संसाधनों को साझा करने, इनके रखरखाव और इससे जुड़े अंतर्राज्यीय विवादों के समाधान हेतु मिलकर कार्य करना चाहिये।

निष्कर्ष:

बाँध न सिर्फ देश की ऊर्जा ज़रूरतों को पूरा करने में योगदान देते हैं बल्कि ये देश में जल संकट की चुनौती से निपटने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हमारे दैनिक जीवन के महत्त्वपूर्ण घटकों से जुड़े होने के कारण बाँधों का नियमित रखरखाव देश के सतत् विकास और राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। केंद्र सरकार द्वारा DRIP की शुरुआत इस दिशा में एक सकारात्मक पहल है, हालाँकि सरकार को बाँध सुरक्षा अधिनियम के संदर्भ में राज्यों की चिंताओं पर विचार करते हुए देश में बाँधों के प्रबंधन से जुड़े सभी हितधारकों के साझा सहयोग को सुनिश्चित करने पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये।

हाथ से मैला ढोने (मैनुअल स्कैवेंजिंग) की प्रथा का उन्मूलन

संदर्भ:

हाल ही में केंद्र सरकार द्वारा 'हाथ से मैला उठाने वाले कर्मियों के नियोजन का प्रतिषेध और उनका पुनर्वास अधिनियम, 2013' में कुछ संशोधन किये जाने का प्रस्ताव किया गया है। गौरतलब है कि केंद्रीय सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा जारी एक रिपोर्ट को देखने के बाद इस संशोधन को लाने का निर्णय लिया गया । इस रिपोर्ट में शामिल आँकड़ों के अनुसार, पिछले पाँच वर्षों में देश में 'मैनुअल स्कैवेंजिंग' (Manual scavenging) के कारण 376 लोगों की मृत्यु हो गई जबकि इसमें से 110 मौतें वर्ष 2019 में ही हुई थी। प्रस्तावित संशोधन के तहत सीवरों और सेप्टिक टैंकों की मशीनीकृत सफाई को अनिवार्य करने का प्रावधान किया गया है, साथ ही इसके उल्लंघन की शिकायत दर्ज कराने के लिये एक 24X7 हेल्पलाइन की स्थापना भी की जाएगी।

हालाँकि एक ऐसी समस्या जिसकी पैठ सामाजिक पदानुक्रम में अत्यधिक गहराई तक बनी हो, उसे समाप्त करने के लिये तकनीकी या कानूनी समाधान पर्याप्त नहीं होंगे।

'मैनुअल स्कैवेंजिंग' (Manual scavenging):

- मैनुअल स्कैवेंजिंग (Manual scavenging) से आशय किसी व्यक्ति द्वारा बिना किसी विशेष सुरक्षा उपकरण के अपने हाथों से ही मानवीय अपशिष्टों (human excreta) की सफाई करने या ऐसे अपशिष्टों को सर पर ढोने की प्रथा से है।
- पूर्व में इसके तहत शुष्क शौचालय से मल मूत्र को हटाने की प्रथा को शामिल किया जाता था।
- हालाँकि समय के साथ मैनुअल स्कैवेंजिंग का दायरा और भी बढ़ा है, इसके तहत नालियों, सीवर लाइनों, सेप्टिक टैंकों और लैटरीन गड्ढों/ की मैनुअल और असुरक्षित सफाई शामिल है।

मैनुअल स्कैवेंजिंग के विरुद्ध कानूनी प्रावधान और अन्य प्रयास :

- वर्ष 1955 के 'नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955' (The Protection of Civil Rights Act, 1955) के तहत अस्पृश्यता पर आधारित मैला ढोने या झाड़ू लगाने जैसी कुप्रथाओं के उन्मूलन की बात कही गई थी।
- वर्ष 1956 में काका कालेलकर आयोग ने शौचालयों की सफाई के मशीनीकरण की आवश्यकता को रेखांकित किया था।
- इसके बाद, मलकानी समिति (1957) और पंड्या समिति (1968) दोनों ने भारत में मैनुअल स्कैवेंजिंग की सेवा शर्तों को विनियमित किया गया ।

- "मैनुअल स्कैवेंजर्स का रोज़गार और शुष्क शौचालय का निर्माण (निषेध) अधिनियम, 1993" के तहत देश में हाथ से मैला ढोने की प्रथा को प्रतिबंधित कर दिया गया है तथा इसे संज्ञेय अपराध मानते हुए ऐसे मामलों में एक वर्ष तक के कारावास और जुर्माने का प्रावधान किया गया है।
  - यह अधिनियम देश में शुष्क शौचालयों के निर्माण को भी प्रतिबंधित करता है।
- "मैनुअल स्कैवेंजर्स के नियोजन का प्रतिषेध और उनका पुनर्वास अधिनियम, 2013" के तहत मैनुअल स्कैवेंजिंग को पूरी तरह प्रतिबंधित किया गया है।
  - इसके साथ ही इस अधिनियम के तहत नालियों, सीवर टैंकों, सेप्टिक टैंकों को बिना किसी सुरक्षा उपकरण के मैन्युअल रूप से साफ करने के लिये लोगों को रोज़गार देना या उन्हें इससे जोड़ना एक दंडनीय (कारावास और/या जुर्माना) अपराध है
  - इस अधिनियम में राज्य सरकारों और नगरपालिका निकायों को हाथ से मैला ढोने वाले लोगों की पहचान कर परिवार सहित उनके पुनर्वास का प्रबंध करने की बात कही गई है।
  - इस अधिनियम के तहत मैनुअल स्कैवेंजर्स को प्रशिक्षण प्रदान करने, ऋण देने और आवास प्रदान करने की भी व्यवस्था की गई है।
  - इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सीवर की सफाई के दौरान मौत के प्रत्येक मामले में पीड़ित परिवार को मुआवजे के रूप में 10 लाख रुपए की आर्थिक सहायता प्रदान करने का प्रावधान किया गया था।

भारत में मैनुअल स्कैवेंजिंग की स्थिति :

- इन कानूनों के लागू होने के बाद भी देश में मैनुअल स्कैवेंजिंग के कारण होने वाली मौतों में कोई कमी नहीं आई है।
- वर्ष 2002 में केंद्रीय सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा जारी एक अनुमान के अनुसार, देश में लगभग 79 मिलियन लोग इस कुप्रथा से जुड़े हुए थे।
- भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक द्वारा वर्ष 2003 में जारी एक रिपोर्ट में वर्ष 1993 के अधिनियम की असफलताओं को रेखांकित किया गया था।
- वर्ष 2018 में मैनुअल स्कैवेंजिंग से जुड़ी मौतों के 68 मामले सामने आए थे जबकि वर्ष 2019 में 61% की वृद्धि के साथ ऐसे मामलों की संख्या बढ़कर 110 तक पहुँच गई।
- राष्ट्रीय स्तर पर किये गए एक सर्वेक्षण के तहत 31 जनवरी, 2020 तक देश के 18 राज्यों में मैनुअल स्कैवेंजिंग से जुड़े लगभग 48,000 लोगों की पहचान की गई थी
- वर्ष 2018 के एक सर्वेक्षण के अनुसार, उत्तर प्रदेश राज्य में मैनुअल स्कैवेंजिंग से जुड़े 29,923 लोगों की पहचान की गई थी, जो देश के किसी भी राज्य से अधिक है।

मैनुअल स्कैवेंजिंग की व्यापकता के कारण:

- सामाजिक मुद्दे:
  - मैनुअल स्कैवेंजिंग की प्रथा भारत की जाति व्यवस्था से जुड़ी हुई है, जहाँ तथाकथित निचली जातियों से ही इस काम को करने की उम्मीद की जाती है।
  - हालाँकि कानूनों के माध्यम से रोज़गार के रूप में मैनुअल स्कैवेंजिंग को प्रतिबंधित किया गया है परंतु इसके साथ जुड़ा कलंक और भेदभाव अभी भी जारी है।
  - यह सामाजिक भेदभाव मैनुअल स्कैवेंजिंग को छोड़ चुके श्रमिकों के लिये आजीविका के नए या वैकल्पिक माध्यम प्राप्त करना कठिन बना देता है। ऐसे में लोगों को अपने परिवार के भरण-पोषण के लिये अन्य अवसरों की अनुपस्थिति में एक बार पुन: मैनुअल स्कैवेंजिंग की ओर ही लौटना पड़ता है।
- सुरक्षा उपकरणों का अभाव:
  - मैनुअल स्कैवेंजिंग के दौरान मृत्यु के मामलों में वृद्धि का सबसे बड़ा कारण यह है कि अधिकांशत: मैनहोल को साफ कर रहे लोगों के पास पर्याप्त उपकरण और सुरक्षात्मक समान नहीं होते हैं।
    - इस कार्य में लगे लोग अक्सर बाल्टी, झाड़ू और टोकरी जैसे बुनियादी उपकरणों का ही प्रयोग करते हैं।

- उदासीन रवैया:
  - कई अध्ययनों में राज्य सरकारों द्वारा इस कुप्रथा को समाप्त कर पाने की असफलता को स्वीकार न करना और इसमें सुधार के प्रयासों की कमी को एक बड़ी समस्या बताया है।
  - मैनुअल स्कैवेंजिंग को समाप्त करने हेतु नवीन तकनीकों में निवेश करने और इससे जुड़े श्रमिकों के पुनर्वास की बजाय अधिकांश नगरपालिकाओं द्वारा इस कुप्रथा के वर्तमान में भी जारी रहने से इनकार किया जाता है।
  - इसके अतिरिक्त समाचारों में अक्सर मैनुअल स्कैवेंजिंग के कारण होने वाली मौतों की खबरें होने के बावजूद भी राज्यों से मैनुअल स्कैवेंजर्स को नियोजित करने के लिये दोषी पाए जाने वाले लोगों पर कार्रवाई की कोई रिपोर्ट नहीं देखने को मिली है।
- अनुबंध और आउटसोर्स की समस्या:
  - कई स्थानीय निकायों द्वारा सीवर सफाई जैसे कार्यों के लिये निजी ठेकेदारों से अनुबंध किया जाता है परंतु इनमें से कई ठेकेदारों या कंपनियों द्वारा महत्त्वपूर्ण नियमों का उल्लंघन किया जाता है और अपने कर्मचारियों की जानकारी को व्यवस्थित रूप से दर्ज नहीं किया जाता।
    - ऐसे में सफाई के दौरान किसी कर्मचारी की मृत्यु होने पर इन कंपनियों या ठेकेदारों द्वारा मृतक से किसी भी प्रकार का संबंध होने से इनकार कर दिया जाता है।

आगे की राह:

- पहचान और प्रत्यक्ष हस्तक्षेप: केंद्रीय सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा ठेकेदारों या नगरपालिकाओं को पैसा देने के बजाय सफाई मशीनों की खरीद के लिये सीधे श्रमिकों को धन मुहैया कराने का फैसला किया है, जो इस चुनौती से निपटने के लिये एक महत्त्वपूर्ण कदम है।
  - इस पहल की सफलता के लिये राज्य सरकारों को जहरीले कीचड़ से भरे गंदे नालों आदि की सफाई में लगे श्रमिकों की सटीक गणना करने की आवश्यकता है।
- स्थानीय प्रशासन का सशक्तीकरण: 15वें वित्त आयोग द्वारा स्वच्छ भारत मिशन को सर्वोच्च प्राथमिकता के रूप में चिन्हित किये जाने और स्मार्ट सिटीज़ तथा शहरी विकास के लिये उपलब्ध धन मैनुअल स्कैवेंजिंग की समस्या को हल करने के लिये एक मज़बूत अवसर प्रदान करता है।
  - हालाँकि इसके लिये स्थानीय प्रशासन को सशक्त बनाना बहुत ही आवश्यक होगा, जिससे मशीनीकृत सफाई के लिये धन की कमी एक बाधा न बने।
  - गौरतलब है कि सरकार द्वारा प्रस्तावित संशोधन के माध्यम से अगस्त 2021 तक देश में मैनुअल स्कैवेंजिंग को पूरी तरह समाप्त करने का लक्ष्य रखा गया है, साथ ही सरकार ने सभी राज्यों को अप्रैल 2021 तक सीवर-सफाई को मशीनीकृत करने के लिये एक 'चैलेंज' (Challenge) की शुरुआत की है, इसके तहत विभिन्न श्रेणियों में कुल 52 करोड़ के पुरस्कार वितरित किये जाएंगे।
- सामाजिक जागरूकता: मैनुअल स्कैवेंजिंग से जुड़े सामाजिक पहलुओं से निपटने से पहले यह स्वीकार किया जाना चाहिये कि आज भी यह कुप्रथा जाति और वर्ण व्यवस्था से जुड़ी हुई है, साथ ही इसके पीछे के कारकों को समझाना भी आवश्यक है।
  - इस कुप्रथा के अंत के लिये लोगों को मैनुअल स्कैवेंजिंग के दौरान मानव अधिकार के घोर उल्लंघन के बारे में लोगों को जागरूक करना बहुत ही आवश्यक है।
- सख्त कानूनी प्रावधान: मैनुअल स्कैवेंजिंग को समाप्त करने से जुड़े पूर्व के प्रयासों से इसके मामलों में कमी आई है परंतु देश के अधिकांश हिस्सों में यह प्रथा अभी भी जारी है, ऐसे में इस समस्या के समाधान हेतु तकनीकी विकल्पों को बढ़ावा दिये जाने के साथ मैनुअल स्कैवेंजिंग से जुड़े कानूनों को और सख्त किया जाना चाहिये।

निष्कर्ष: वर्तमान में मैनुअल स्कैवेंजिंग से जुड़े लोग देश के सबसे गरीब और सबसे वंचित समुदायों में से आते हैं। साथ ही यह कुप्रथा जाति और आर्थिक असमानता से भी बहुत गहराई तक जुड़ी हुई है जिससे इस समस्या को रोक पाना बहुत कठिन हो गया है। मैनुअल स्कैवेंजिंग को समाप्त करने के लिये तकनीकी विकल्पों को बढ़ावा देने के साथ, सामाजिक जागरूकता और इस पेशे से जुड़े लोगों के पुनर्वास पर विशेष ध्यान देना होगा।

नोट :

शासन के अंगों के बीच नियंत्रण और संतुलन

संदर्भ:

हाल ही में गुजरात के केवड़िया में 80वें अखिल भारतीय पीठासीन अधिकारी सम्मेलन (All India Presiding Officers Conference) का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच 'सामंजस्यपूर्ण समन्वय' विषय को लेकर बड़े पैमाने पर कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा की गई।

इस सम्मेलन में भारतीय प्रधानमंत्री ने शासन के तीनों अंगों (विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका) के संदर्भ में भारतीय संविधान में निहित नियंत्रण और संतुलन तथा शक्ति के पृथक्करण की व्यवस्था एवं इसके महत्त्व को रेखांकित किया।

हालाँकि हाल ही में ऐसे कई उदाहरण देखने को मिले हैं जो शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत तथा जाँच और संतुलन की प्रणाली को कमज़ोर करते हैं। इन महत्त्वपूर्ण संस्थानों के प्रति सत्यनिष्ठा में आई कमी के कारण सरकार के कामकाज पर लोगों का विश्वास भी खत्म हो सकता है, जो एक लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिये उचित नहीं होगा।

शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत:

- शक्ति के पृथक्करण से आशय सरकार के कार्यों (विधायी, कार्यकारी और न्यायिक) का विभाजन है।
- चूँकि किसी भी कानून के निर्माण, उसे लागू करने और प्रशासन के लिये इन तीनों शाखाओं की मंज़ूरी आवश्यक है, ऐसे में यह व्यवस्था सरकार द्वारा मनमानी या ज़्यादतियों की संभावना को कम करती है।
- इस व्यवस्था के तहत संवैधानिक सीमांकन के चलते सरकार की किसी भी एक शाखा में शक्ति के एकीकरण को रोका जा सकता है।

नियंत्रण और संतुलन:

- विधायिका का नियंत्रण:
  - न्यायपालिका के संदर्भ में: न्यायाधीशों पर महाभियोग और उन्हें हटाने की शक्ति तथा न्यायालय के 'अधिकार से परे' या अल्ट्रा वायर्स घोषित कानूनों में संशोधन करने और इसे पुन: मान्य बनाने की शक्ति।
  - कार्यपालिका के संदर्भ में:
    - विधायिका निर्धारित प्रक्रिया के तहत एक अविश्वास मत पारित कर सरकार को भंग कर सकती है।
    - विधायिका को प्रश्नकाल और शून्यकाल के माध्यम से कार्यपालिका के कार्यों का आकलन करने की शक्ति प्रदान की गई है।
    - साथ ही विधायिका को राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने का भी अधिकार प्राप्त है।
- कार्यपालिका का नियंत्रण:
  - न्यायपालिका के संदर्भ में:
    - मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करना।
  - विधायिका के संदर्भ में:
    - प्रत्यायोजित कानून के तहत प्राप्त शक्तियाँ। संविधान के प्रावधानों के तहत संबंधित कानूनों के प्रभावी कार्यन्वयन हेतु आवश्यक नियम बनाने का अधिकार।
- न्याय पालिका का नियंत्रण:
  - कार्यपालिका के संदर्भ में:
    - न्यायिक समीक्षा अर्थात् कार्यपालिका के कार्यों की समीक्षा करने की शक्ति, इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि कार्यपालिका की कार्रवाई के दौरान संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन न हो।
  - विधायिका के संदर्भ में:
    - केशवानंद भारती मामले (1973) में उच्चतम न्यायालय द्वारा 'संविधान की आधारभूत संरचना' (Basic Structure of the Constitution) के तहत संविधान संशोधन के अधिकार को सीमित किया गया था।

नोट :

नियंत्रण और संतुलन की कमज़ोर प्रणाली:

- कमज़ोर विपक्ष: एक लोकतांत्रिक व्यवस्था नियंत्रण और संतुलन के सिद्धांत पर कार्य करती है। यह नियंत्रण और संतुलन व्यवस्था ही है जो एक लोकतांत्रिक व्यवस्था को बहुसंख्यकवादी व्यवस्था में बदलने से बचाती है।
  - एक संसदीय प्रणाली में यह नियंत्रण और संतुलन का कार्य विपक्षी दल द्वारा किया जाता है।
  - परंतु लोकसभा में एक ही दल को प्राप्त बहुमत ने संसद में एक प्रभावी विपक्ष की भूमिका को कम कर दिया है।
- कमज़ोर विधायी समीक्षा: पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च के आँकड़ों के अनुसार, 14वीं लोकसभा में 60% और 15वीं लोकसभा में 71% विधेयकों को संबंधित विभागों की स्थायी समितियों (Department-related Standing Committees- DRSCs) के पास भेजा गया था।
  - हालाँकि 16वीं विधानसभा में DRSCs को भेजे गए विधेयकों का अनुपात घटकर मात्र 27% ही रह गया।
  - DRSCs को भेजे गए विधेयकों के अलावा सदनों की चयन समितियों या संयुक्त संसदीय समितियों को भेजे गए विधेयकों की संख्या भी बहुत कम ही रही है।
- न्यायपालिका का हस्तक्षेप: वर्ष 2015 में उच्चतम न्यायालय द्वारा संविधान के 99वें संशोधन को असंवैधानिक एवं शून्य घोषित कर दिया गया था।
- गौरतलब है कि यह संशोधन उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये कॉलेजियम प्रणाली के स्थान पर एक नए निकाय "राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग" (National Judicial Appointments Commission-NJAC) की स्थापना करने का प्रावधान करता है।
  - राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अनुचित राजनीतिकरण से हटकर चयन प्रणाली की स्वतंत्रता की गारंटी प्रदान कर सकता है, जो नियुक्तियों की गुणवत्ता में सुधार के साथ चयन प्रक्रिया की निष्पक्षता सुनिश्चित करने, न्यायपालिका की संरचना में विविधता को बढ़ावा देने तथा चयन प्रणाली के प्रति जनता के विश्वास को मज़बूत करने में सहायक हो सकता है।
- न्यायिक सक्रियता: हाल में उच्चतम न्यायालय के कई निर्णयों में अतिसक्रियता देखने को मिली और कई मामलों में न्यायालय ने ऐसे निर्णय दिये हैं, जो विधायिका और कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप के समान प्रतीत होते हैं।
- कार्यपालिका का अतिक्रमण: भारत की कार्यपालिका पर सत्ता के अति-केंद्रीकरण, केंद्रीय सूचना आयोग और सूचना का अधिकार (RTI) जैसे सार्वजनिक संस्थानों को कमज़ोर बनाने, राज्य की कानून-व्यवस्था और सुरक्षा को मज़बूत करने परंतु अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने के लिये कानून पारित करने आदि आरोप लगते रहे हैं।

आगे की राह:

- विधायी प्रभाव आकलन: एक व्यापक विधायी प्रभाव आकलन प्रणाली को लागू किया जाना बहुत ही आवश्यक है, जिसके तहत सभी विधायी प्रस्तावों का उनके सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय और प्रशासनिक प्रभावों के आधार मूल्यांकन किया जा सके।
  - विधायी योजना की देख-रेख और समन्वय के लिये संसद की एक नई विधान समिति का गठन किया जाना चाहिये।
  - यह समिति कार्यपालिका द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाने के ऐसे मामलों की जाँच कर सकती है, जहाँ कार्यपालिका की कार्रवाई से नागरिकों की स्वतंत्रता को क्षति पहुँचती हो।
- विपक्ष की भूमिका को मज़बूत करना: विपक्ष की भूमिका को मजबूत करने के लिये भारत में छाया मंत्रिमंडल या 'शैडो कैबिनेट' (Shadow Cabinet) के गठन पर विचार किया जा सकता है।
- छाया मंत्रिमंडल:
  - 'शैडो कैबिनेट' ब्रिटिश कैबिनेट प्रणाली का एक अनूठा संस्थान है।
  - यह विपक्षी दल द्वारा सत्तारूढ़ कैबिनेट को संतुलित करने और भविष्य में मंत्री पद के लिये अपने सदस्यों को तैयार करने हेतु स्थापित किया जाता है।
  - इसके तहत छाया मंत्रिमंडल में प्रत्येक मंत्री अपने विभाग से संबंधित सरकारी मंत्रालय की नीतियों तथा कामकाज की बारीकी से जाँच करता है तथा संबंधित मुद्दे पर अपनी राय रखते हुए वैकल्पिक समाधान प्रस्तुत करता है।

- न्यायिक पारदर्शिता: उच्चतम न्यायालय संविधान का संरक्षक है जो विधायिका और कार्यपालिका द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर हस्तक्षेप करने से जुड़े मामलों की जाँच करता है। ऐसे में न्यायपालिका को कॉलेजियम प्रणाली में पारदर्शिता बनाए रखने पर विशेष ध्यान देते हुए संवैधानिक नैतिकता सुनिश्चित करने का प्रयत्न करना चाहिये।
  - जब तक एक बेहतर तंत्र विकसित नहीं किया जाता है, तब तक उच्चतम न्यायालय को कॉलेजियम प्रणाली को और अधिक पारदर्शी तथा जवाबदेह बनाने के लिये आवश्यक कदम उठाना चाहिये जिससे इसकी कार्यप्रणाली को अधिक लोकतांत्रिक बनाया जा सके।

निष्कर्ष:

शासन के एक अंग द्वारा दूसरे के कार्यों में बार-बार हस्तक्षेप करने से उसकी अखंडता, गुणवत्ता और दक्षता पर लोगों का विश्वास कम होने लगता है। साथ ही इससे लोकतंत्र की भावना का अवमूल्यन होता है, क्योंकि शासन के किसी एक अंग में शक्तियों का बहुत अधिक संचय 'नियंत्रण और संतुलन' के सिद्धांत को कमज़ोर करता है।

दृष्टि The Vision

आर्थिक घटनाक्रम

कुपोषण और महामारी

संदर्भ:

हाल के वर्षों में जब भारत पहले से ही भुखमरी और कुपोषण की चुनौती से निपटने का प्रयास कर रहा है, ऐसे समय में COVID-19 महामारी तथा इसके नियंत्रण हेतु लागू देशव्यापी लॉकडाउन ने इस संकट को और अधिक बढ़ा दिया है। इस महामारी के कारण उत्पन्न हुई चुनौतियों ने समाज में आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों और असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को सबसे अधिक प्रभावित किया है। इस महामारी के दुष्प्रभावों से निपटने के लिये केंद्र सरकार द्वारा प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना और आत्मनिर्भर भारत अभियान के तहत कुछ राहत पैकेज की घोषणा की गई। हालाँकि कई अध्ययनों में लोगों की चुनौतियों को कम करने में सरकार के इन प्रयासों को अपर्याप्त बताया गया है, साथ ही एक बड़ी समस्या यह भी है कि प्रधानमंत्री गरीब गरीब कल्याण योजना की अवधि 30 नवंबर, 2020 को समाप्त हो जाएगी परंतु अभी तक इस योजना को आगे भी जारी रखने के संदर्भ में कोई आधिकारिक घोषणा नहीं की गई है। गौरतलब है कि वर्तमान परिस्थिति से बाहर निकलने के लिये सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) का सार्वभौमीकरण एक उपयुक्त विकल्प हो सकता है।

खाद्यान्न असुरक्षा:

- खाद्यान्न असुरक्षा से आशय धन अथवा अन्य संसाधनों के अभाव में पौष्टिक एवं पर्याप्त भोजन तक अनियमित पहुँच से है। खाद्य संकट के दौरान लोगों को भुखमरी का सामना करना पड़ता है।
- खाद्यान्न संकट या असुरक्षा को सामान्यत: दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-
  1. मध्यम स्तरीय खाद्य असुरक्षा (Moderate Food Insecurity): इसका अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें लोगों को कभी-कभी खाद्य की अनियमित उपलब्धता का सामना करना पड़ता है और उन्हें भोजन की मात्रा एवं गुणवत्ता के साथ भी समझौता करना पड़ता है।
  2. गंभीर खाद्य असुरक्षा (Severe Food Insecurity): इसका अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें लोग कई दिनों तक भोजन से वंचित रहते हैं और उन्हें पौष्टिक एवं पर्याप्त आहार उपलब्ध नहीं हो पाता है।
- खाद्य असुरक्षा की समीक्षा दो मानकों के आधार पर की जाती है।
  1. अल्पपोषण की व्यापकता (Prevalence of Undernourishment- PoU)
  2. मध्यम और गंभीर खाद्य असुरक्षा की व्यापकता (Prevalence of Moderate and Severe Food Insecurity-PMSFI)
- गौरतलब है कि PoU के तहत किसी देश की आबादी में लंबे समय से पोषक तत्त्वों की कमी पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, वहीं PMSFI पर्याप्त और पौष्टिक भोजन की पहुँच की कमी को मापने का एक व्यापक माध्यम है।

भारत में खाद्यान्न संकट और कुपोषण की स्थिति:

- खाद्य और कृषि संगठन के आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2014-16 के बीच भारत की लगभग 27.6% आबादी को मध्यम अथवा गंभीर खाद्य असुरक्षा का सामना करना बड़ा, जबकि वर्ष 2017-19 के बीच ऐसे लोगों का अनुपात बढ़कर 31.6% तक पहुँच गया।
- वर्ष 2014-16 के बीच भारत में खाद्य असुरक्षा का सामना कर रहे 42.65 करोड़ लोगों की संख्या वर्ष 2017-19 के बीच बढ़कर 48.86 करोड़ तक पहुँच गई।
- वर्ष 2017-19 के बीच खाद्य असुरक्षा का सामना कर रही कुल वैश्विक आबादी में से 22% लोग भारत से थे।

COVID-19 महामारी और भुखमरी:

- हालाँकि वर्तमान में देश में खाद्य संकट की स्थिति में काफी सुधार हुआ है परंतु अभी भी यह लॉकडाउन से पहले की तुलना में काफी खराब है। भुखमरी की समस्या आय स्तर के अंतर के बावजूद समाज में व्यापक स्तर पर जारी है।

नोट :

- लॉकडाउन के दौरान जिन लोगों के पास आय का कोई स्रोत नहीं था, उनमें से लगभग 87% लोगों अभी भी बेरोज़गारी का सामना कर रहे हैं।
    - आय में कमी और खाद्यान्न अनुपलब्धता के कारण लोगों की खाद्य सुरक्षा (विशेषकर आर्थिक रूप से कमज़ोर और समाज के निचले तबके के लोग) प्रभावित हुई है।
- वर्ष 2011 के राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के आधार पर हाल ही 'फूड पॉलिसी' नामक पत्रिका में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, ग्रामीण भारत में 63-76% लोग पौष्टिक आहार नहीं ले पाते हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS):

- सार्वजनिक वितरण प्रणाली, केंद्रीय उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय के तहत स्थापित एक भारतीय खाद्य सुरक्षा प्रणाली है, यह प्रणाली सस्ती दरों पर खाद्यान्न वितरण के माध्यम से खाद्य सुरक्षा के प्रबंधन के लिये उत्तरदायी है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली से जुड़ी चुनौतियाँ:

- पुराना जनसांख्यिकीय डेटाबेस: वर्तमान में सार्वजनिक खाद्य वितरण प्रणाली के तहत खाद्यान्न प्राप्त करने के लिये लोगों की पात्रता के निर्धारण के लिये वर्ष 2011 की जनगणना के आँकड़ों को आधार के रूप में प्रयोग किया जाता है, जो कि लगभग 9 वर्ष पुराना है।
    - वर्ष 2011 के बाद से भारत के जनसांख्यिकीय परिदृश्य में काफी बदलाव हुआ है, वर्ष 2011 की जनगणना के दौरान रही जनसंख्या वृद्धि की दर के आधार पर वर्ष 2020 में देश की आबादी 1.35 बिलियन होनी चाहिये।
- सीमित पहुँच: हाल के वर्ष कई राज्य सरकारों द्वारा लोगों को नए राशनकार्ड जारी करने के प्रति अनिच्छा व्यक्त की गई है। इसका एक कारण यह है कि ऐसे अधिकांश राज्य पहले ही अपना कोटा पहले ही समाप्त कर चुके हैं, जिसे खाद्य सुरक्षा अधिनियम के लागू होने के बाद से अब तक बढ़ाया नहीं गया है। उदाहरण के लिये झारखंड सरकार द्वारा कई वर्षों पहले ही नए राशन कार्डों को जारी करना बंद कर दिया गया था।
- समावेशन और बहिष्करण त्रुटियाँ: सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत पात्र परिवारों की पहचान में होने वाली त्रुटियाँ इस प्रणाली की सफलता में एक बड़ी बाधा है, कई अध्ययनों के अनुसार, सार्वजनिक वितरण प्रणाली में परिवारों के बहिष्करण की 61% त्रुटियाँ और समावेशन के मामले में 25% त्रुटियाँ देखी गई हैं।
- अकुशल वितरण प्रणाली: वितरण प्रक्रिया के लिये खाद्यान्न की खरीद से लेकर पात्र लोगों तक पहुँचने के दौरान (जैसे-भंडारण, परिवहन आदि) में होने वाले नुकसान के साथ भ्रष्टाचार के कारण खाद्यान्न की चोरी को रोक पाना भी एक बड़ी चुनौती रही है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (NFSA), 2013:

- 'राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013' को 5 जुलाई, 2013 को अधिसूचित किया गया था।
- इसके तहत 'लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली' (Targeted Public Distribution System- TPDS) के अंतर्गत सब्सिडी युक्त खाद्यान्न प्राप्त करने के लिये 75%ग्रामीण आबादी और 50% शहरी आबादी के कवरेज़ का प्रावधान है।
- इस अधिनियम के तहत राशन कार्ड जारी करने के लिये किसी परिवार की 18 वर्ष से अधिक सबसे वरिष्ठ महिला को परिवार के मुखिया के रूप में माना जाता है।

आगे की राह:

- सार्वजनिक वितरण प्रणाली का सार्वभौमीकरण: आबादी के सिर्फ कुछ ही प्रतिशत लोगों के बजाय सभी परिवारों को पीडीएस के तहत एक लाभार्थी बनाकर अधिक-से-अधिक लोगों के लिये खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सकता है।
    - सार्वभौमीकरण के माध्यम खाद्य वितरण प्रणाली में अंडर कवरेज, समावेशन और बहिष्करण की त्रुटियों जैसी चुनौतियों से निपटने में सहायता प्राप्त होगी।
- सामुदायिक रसोइयाँ या कम्युनिटी किचन: खाद्य वितरण प्रणाली के सार्वभौमीकरण के साथ सरकार द्वारा शहरी क्षेत्रों में कम्युनिटी किचन की स्थापना का प्रयास किया जाना चाहिये। गौरतलब है कि शहरी क्षेत्रों में ऐसे बहुत से लोग है जो संसाधनों की कमी या अन्य कारणों से भोजन पकाने में असमर्थ हैं।

- इस प्रयास के माध्यम से प्रवासी या असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों, बेघर और निराश्रित आबादी के लिये पोषक तत्त्वों से युक्त पके हुए भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकेगी।
- कार्यक्रमों का प्रभावी कार्यान्वयन: एक अध्ययन के अनुसार, उच्चतम न्यायालय द्वारा COVID-19 महामारी के दौरान स्कूली भोजन जारी रखने के आदेश के 6 माह बाद भी देश में आंगनबाड़ी में पंजीकृत आधे से भी कम (47%) बच्चों तथा केवल दो-तिहाई (लगभग 63%) स्कूली बच्चों को भोजन के बदले सूखा अनाज और/या नकद सहायता उपलब्ध हो सका है।
- एक राष्ट्र एक राशनकार्ड योजना (ONORC): एक राष्ट्र एक राशनकार्ड योजना के माध्यम से लाभार्थी देश के किसी भी हिस्से में रहते हुए सब्सिडीयुक्त खाद्यान्न प्राप्त करने में सक्षम होंगे, जो सार्वजनिक वितरण प्रणाली के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कार्यप्रणाली को अधिक प्रभावी बनाने के लिये इसमें सुधार से संबंधित शांता कुमार समिति की सिफारिश को लागू करने पर विचार किया जाना चाहिये।

निष्कर्ष:

COVID-19 महामारी के कारण आर्थिक क्षेत्र में आई गिरावट से उबरने और अर्थव्यवस्था को पुन गति प्रदान करने में काफी समय लग सकता है, परंतु इस दौरान देश में खाद्यान्न की कमी तथा भुखमरी जैसी चुनौतियों से निपटने के लिये अतिरिक्त सहयोग की आवश्यकता होगी ऐसे में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के सार्वभौमीकरण को लागू करने का इससे बेहतर मौका नहीं हो सकता इसके साथ ही बाज़ार में मांग की कमी को दूर करने के लिये शहरी रोज़गार कार्यक्रमों के साथ महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) को मज़बूत किया जाना बहुत ही आवश्यक है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और कृषि

संदर्भ:

विश्व की आबादी के बढ़ने के साथ ही कृषि योग्य भूमि की कमी एक बड़ी समस्या बनकर उभरी है, ऐसे में लोगों को कृषि के संदर्भ में अधिक रचनात्मकता और कुशलता आर्जित करने की आवश्यकता है। इसके तहत कम भूमि के उपयोग से ही फसल की उपज और उत्पादकता को बढ़ाने पर विशेष ज़ोर देना होगा। भारत में स्वतंत्रता के बाद से ही कृषि सुधार के कई बड़े प्रयास के बावजूद आज भी यह क्षेत्र मानसून की अनिश्चितता, आधुनिक उपकरणों की कमी आदि समस्याओं से जूझ रहा है। इस संदर्भ में जलवायु परिवर्तन और खाद्य असुरक्षा जैसी समस्याओं के बीच कृत्रिम बुद्धिमत्ता कृषि उत्पादकता को बढ़ाने में सहायक हो सकती है। गौरतलब है कि हाल ही में प्रधानमंत्री ने 'सामाजिक सशक्तिकरण के लिये उत्तरदायी कृत्रिम बुद्धिमत्ता शिखर सम्मेलन-2020' या रेज़-2020 (RAISE 2020) का उद्घाटन करते हुए कृषि, स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा को सशक्त बनाने, अगली पीढ़ी के शहरी बुनियादी ढाँचे के विकास में कृत्रिम बुद्‌मित्ता (Artificial Intelligence- AI) की महत्त्वपूर्ण भूमिका होने की बात कही थी।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence- AI):

- कंप्यूटर विज्ञान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता या आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से आशय किसी कंप्यूटर, रोबोट या अन्य मशीन द्वारा मनुष्यों के समान बुद्धिमत्ता के प्रदर्शन से है।
- दूसरे शब्दों में कहा जाए तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता किसी कंप्यूटर या मशीन द्वारा मानव मस्तिष्क के सामर्थ्य की नकल करने की क्षमता है, जिसमें उदाहरणों और अनुभवों से सीखना, वस्तुओं को पहचानना, भाषा को समझना और प्रतिक्रिया देना, निर्णय लेना, समस्याओं को हल करना तथा ऐसी ही अन्य क्षमताओं के संयोजन से मनुष्यों के समान ही कार्य कर पाने की क्षमता आदि शामिल है।
- वर्तमान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग शिक्षा, स्वास्थ्य, अंतरिक्ष विज्ञान, रक्षा, परिवहन और कृषि जैसे विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है।

कृषि क्षेत्र की वर्तमान चुनौतियाँ:

- पिछले दो दशकों के दौरान देश में कृषि उत्पादकता को बढ़ाने में बड़ी सफलता प्राप्त हुई है, हालाँकि पर्याप्त संसाधनों, वैज्ञानिक परामर्श आदि की कमी के कारण कृषि क्षेत्र में फसलों की विविधता का अभाव रहा है।

- जनसंख्या में हुई व्यापक वृद्धि के कारण देश के अधिकांश हिस्सों में कृषि जोत का आकार छोटा हुआ है, जिससे कृषि में किसी बड़े निवेश की संभावनाएँ भी कम हुई हैं।
- कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिये हानिकारक रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग और कृषि संसाधनों के अनियंत्रित दोहन से मृदा उर्वरता में गिरावट देखी गई है।

कृषि क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता से जुड़ी संभावनाएँ:

- आपूर्ति शृंखला का संवर्द्धन: वर्तमान में वैश्विक कृषि उद्योग लगभग 5 ट्रिलियन डॉलर का है, कृत्रिम बुद्धिमत्ता से जुड़ी प्रौद्योगिकियों के माध्यम से फसलों के उत्पादन के साथ कीटों पर नियंत्रण, मृदा और फसल की वृद्धि की निगरानी, कृषि से जुड़े डेटा का प्रबंधन, कृषि से जुड़े अन्य कार्यों को आसान बनाने और कार्यभार को कम करने आदि के माध्यम से संपूर्ण खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में व्यापक सुधार किया जा सकता है।
  - गौरतलब है कि वित्तीय वर्ष 2019-20 में देश में कृषि-खाद्य से जुड़े तकनीकी स्टार्ट-अप्स ने 133 सौदों के माध्यम से 1 बिलियन अमेरिकी डॉलर का निवेश जुटाया।
  - इसके साथ ही वर्ष 2019 में ही भारत के कृषि उत्पादों का निर्यात बढ़कर 37.4 बिलियन डॉलर तक पहुँच गया। आपूर्ति शृंखला और बेहतर भंडारण तथा पैकेजिंग में निवेश के माध्यम से इसे आगे भी बढ़ाया जा सकता है।
- विकास का अवसर: वर्ष 2019 में वैश्विक स्तर पर कृषि में AI अनुप्रयोग का निवेश लगभग 1 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुँच गया। एक अनुमान के अनुसार, वर्ष 2030 तक 30% वृद्धि के साथ इसके 8 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुँचने की संभावना है।
  - हालाँकि, इस परिदृश्य में, भारतीय कृषि-तकनीक बाज़ार, जिसका मूल्य वर्तमान में 204 मिलियन अमेरिकी डॉलर है, अपनी कुल अनुमानित क्षमता 24% बिलियन अमेरिकी डॉलर के मात्र 1% स्तर तक ही पहुँच सका है।
- विशाल कृषि डेटा संसाधन: भारत में मृदा के प्रकार, जलवायु और स्थलाकृति विविधता के कारण यहाँ से प्राप्त डेटा वैज्ञानिकों को कृषि के लिये अत्याधुनिक AI उपकरण तथा अन्य कृषि समाधान विकसित करने में सहायक होगा।
  - भारतीय खेत और किसान न केवल भारत बल्कि विश्व में बड़े पैमाने पर एआई समाधान बनाने में सहायता के लिये व्यापक और समृद्ध डेटा प्रदान करते हैं। और यह उन प्रमुख कारकों में से एक है जो भारतीय कृषि में एआई के लिये उपलब्ध अवसरों को अद्वितीय बनाता है।

कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग:

- कृषि डेटा का विश्लेषण: कृषि के विभिन्न घटकों में प्रतिदिन सैकड़ों और हज़ारों प्रकार के डेटा (जैसे-मृदा, उर्वरकों की प्रभाविकता, मौसम, कीटों या रोग से संबंधित देता आदि) उपलब्ध होते हैं। AI की सहायता से किसान प्रतिदिन वास्तविक समय में कई तरह के डेटा (जैसे-मौसम की स्थिति, तापमान, पानी के उपयोग या अपने खेत से एकत्रित मिट्टी की स्थिति आदि) विश्लेषण और समस्याओं की पहचान कर बेहतर निर्णय ले सकेंगे।
  - विश्व के विभिन्न हिस्सों में कृषि सटीकता में सुधार और उत्पादकता बढ़ाने के लिये किसानों द्वारा मौसम के पूर्वानुमान का मॉडल तैयार करने के लिये AI का उपयोग किया जा रहा है।
- कृषि में सटीकता: कृषि में अधिक सटीकता लाने हेतु पौधों में बीमारियों, कीटों और पोषण की कमी आदि का पता लगाने के लिये कृषि एआई तकनीकों का उपयोग किया जाता है।
  - एआई सेंसर खरपतवारों की पहचान कर सकते हैं और फिर उनकी पहचान के आधार पर उपयुक्त खरपतवारनाशक का चुनाव कर उस क्षेत्र में सटीक मात्रा में खरपतवारनाशक का छिड़काव कर सकते हैं।
  - यह प्रक्रिया कृषि में विषाक्त पदार्थों के अनावश्यक प्रयोग को सीमित करने में सहायता करती है, गौरतलब है कि फसलों में अत्यधिक कीटनाशक या खरपतवार नाशक के प्रयोग से मानव स्वास्थ्य के साथ प्रकृति पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- श्रमिक चुनौती का समाधान: कृषि आय में गिरावट के कारण इस क्षेत्र को श्रमिकों द्वारा बहुत ही कम प्राथमिकता दी जाती है, वस्तुत: कृषि क्षेत्र में कार्यबल की कमी एक बड़ी चुनौती बनकर उभरी है।

- श्रमिकों की इस कमी को दूर करने में AI कृषि बॉट्स (AI Agriculture Bots) एक उपयुक्त समाधान हो सकते हैं। ये बॉट मानव श्रमिकों के कार्यों में अतिरिक्त समर्थन प्रदान करते हैं और इन्हें कई प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है, उदाहरण के लिये:
    - ये बॉट मानव मज़दूरों की तुलना में अधिक मात्रा में और तेज़ गति से फसलों की कटाई कर सकते हैं, ये अधिक सटीक रूप से खरपतवारों को पहचान कर उन्हें हटाने में सक्षम हैं तथा इनके प्रयोग के माध्यम से कृषि लागत में भारी कमी की जा सकती है।
    - इसके अतिरिक्त, किसानों द्वारा कृषि से जुड़े परामर्श के लिये चैटबॉट की भी सहायता ली जा रही है। कृषि के लिये विशेषज्ञों की सहायता से बनाए गए ये विशेष चैटबॉट विभिन्न प्रकार के सवालों के जवाब देने में मदद करते हैं और विशिष्ट कृषि समस्याओं पर सलाह और सिफारिशें प्रदान करते हैं।

सरकार के प्रयास:

- सरकार द्वारा किसानों को बेहतर परामर्श उपलब्ध कराने के लिये औद्योगिक क्षेत्र के साथ मिलकर एक 'एआई-संचालित फसल उपज पूर्वानुमान मॉडल' के विकास पर कार्य किया जा रहा है।
- प्रणाली फसल उत्पादकता और मिट्टी की पैदावार बढ़ाने, कृषि निवेश के अपव्यय को रोकने तथा कीट या बीमारी के प्रकोप की भविष्यवाणी करने के लिये एआई-आधारित उपकरणों का प्रयोग किया जाता है।
- इस प्रणाली में इसरो (ISRO) द्वारा प्रदान किये गए रिमोट सेंसिंग डेटा के साथ मृदा स्वास्थ्य कार्ड के डेटा, भारत मौसम विज्ञान विभाग (IMD) द्वारा मौसम की भविष्यवाणी, मिट्टी की नमी और तापमान के विश्लेषण संबंधी डेटा का उपयोग किया जाता है।
- इस परियोजना को असम, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के 10 आकांक्षी ज़िलों में कार्यान्वित किया जा रहा है।

निष्कर्ष:

हाल ही में कृषि क्षेत्र में हुए बड़े सुधारों के परिणामस्वरूप भविष्य में अनुबंध कृषि में बेहतर निवेश के साथ बेहतर पैदावार और उत्पादकता के लिये कृषि क्षेत्र में प्रौद्योगिकी के प्रसार की भी संभावनाएँ है। इन प्रयासों के माध्यम से कृषि में AI को अपनाए जाने की पहलों को बढ़ावा मिलेगा। इसके अलावा, इन AI समाधानों के विकास के लिये सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों से निवेश की आवश्यकता होगी।

इस संदर्भ में, हाल ही में संपन्न हुए RAISE-2020 शिखर सम्मेलन ने सार्वजनिक हितों के तहत AI प्रयोग के रोडमैप को अंतिम रूप देने हेतु वैश्विक हितधारकों को साथ लाने के लिये एक महत्त्वपूर्ण मंच प्रदान किया है।

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम

क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी और भारत

संदर्भ:

हाल ही में 10 आसियान (ASEAN) देशों और उनके 5 अन्य मुक्त व्यापार साझेदार देशों (ऑस्ट्रेलिया, चीन, जापान, न्यूज़ीलैंड तथा दक्षिण कोरिया) के बीच 'क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी' (Regional Comprehensive Economic Partnership-RCEP) पर हस्ताक्षर किये गए। भारत ने 7 वर्षों तक इस समझौते की लंबी वार्ता में शामिल रहने के बाद आखिरी मौके पर इससे अलग रहने का निर्णय लिया। RCEP से अलग रहने के पीछे भारत ने इस समझौते में अपने कई मुद्दों और चिंताओं पर आवश्यकता अनुरूप ध्यान नहीं दिये जाने को बड़ा कारण बताया है। हालाँकि वर्तमान समय में वैश्विक व्यापार और अर्थव्यवस्था में हो रहे बड़े बदलावों के बीच विश्व के सबसे बड़े व्यापारिक समझौते से अलग रहने के भारत के इस निर्णय पर कई विशेषज्ञों ने प्रश्न उठाए हैं। इस समझौते की वार्ताओं के दौरान कई मतभेदों को दूर कर लिया गया था परंतु स्थानीय और छोटे व्यवसायियों के हितों से जुड़े मुद्दे तथा ऐसे ही कई अन्य मामलों में अभी भी भारत की आपत्ति बनी हुई है।

'क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी' (Regional Comprehensive Economic Partnership- RCEP):

- क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी (RCEP), आसियान के दस सदस्य देशों तथा पाँच अन्य देशों (ऑस्ट्रेलिया, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया और न्यूज़ीलैंड) द्वारा अपनाया गया एक मुक्त व्यापार समझौता (FTA) है।
- इस समझौते पर 15 नवंबर, 2020 को हस्ताक्षर किये गए।
- RCEP देश विश्व की एक-तिहाई आबादी और वैश्विक जीडीपी के 30% हिस्से (लगभग 26 ट्रिलियन से अधिक) का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- RCEP की अवधारणा नवंबर 2011 में आयोजित 11 वें आसियान शिखर सम्मेलन के दौरान प्रस्तुत की गई और नवंबर 2012 में कंबोडिया में आयोजित 12वें आसियान शिखर सम्मेलन के दौरान इस समझौते की प्रारंभिक वार्ताओं की शुरुआत की गई।
- भारत के साथ अन्य 15 सदस्यों द्वारा इस समझौते पर वर्ष 2019 में हस्ताक्षर किये जाने का अनुमान था परंतु भारत द्वारा नवंबर 2019 में इस समझौते से स्वयं को अलग करने के निर्णय के बाद अब बाकी के 15 देशों द्वारा RCEP पर हस्ताक्षर किये गए हैं।

समझौते से अलग होने का कारण:

- व्यापार घाटा: पिछले कुछ वर्षों के दौरान आसियान और एशिया के कुछ अन्य देशों के साथ मुक्त व्यापार समझौते के परिणामस्वरूप विभिन्न देशों के साथ भारत का द्विपक्षीय व्यापार घाटे में ही रहा है।
- केंद्रीय वित्त मंत्री के अनुसार, मुक्त और वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था के नाम पर भारत में विदेशों से सब्सिडी युक्त उत्पादों के आयात और अनुचित उत्पादन लाभ की गतिविधियों की अनुमति दे दी गई है।
- केंद्रीय वाणिज्य मंत्रालय द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार, वित्तीय वर्ष 2018-19 में RCEP के 11 देशों के साथ भारत का द्विपक्षीय व्यापार घाटे में रहा।
- स्थानीय उत्पादकों के हितों की रक्षा: इस समझौते में शामिल होने के पश्चात् भारत में स्थानीय और छोटे उत्पादकों को कड़ी प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ सकता है।
- RCEP समझौते के तहत सदस्य देशों के बीच वस्तुओं के आयात पर लगने वाले टैरिफ को 92% तक कम करने की बात कही गई है।
- उदाहरण के लिये आयात शुल्क में कटौती होने से भारत के कृषि, डेयरी उत्पाद और अन्य 'सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम' (MSMEs) जैसे अन्य संवेदनशील क्षेत्रों को क्षति हो सकती है।

नोट :

- गौरतलब है कि वर्ष 2019 में भारत में डेयरी उत्पादों के आयात पर औसत लागू टैरिफ 34.8%, जबकि औसत बाध्य टैरिफ 63.8% रहा। भारत में दुग्ध उत्पादन उद्योग छोटे स्तर पर परिवारों द्वारा पाले गए पशुओं के योगदान से संचालित होता है, जबकि ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में औद्योगिक स्तर पर आधुनिक विधियों से दुग्ध उत्पादन किया जाता है।
  - वर्ष 2017 में एक डेयरी फार्म में पशुओं के औसत झुंड का आकार अमेरिका में 191, ओशिनिया में 355, यूनाइटेड किंगडम में 148 और डेनमार्क में 160 था, जबकि भारत यह में सिर्फ 2 ही था।
- अन्य मतभेद: इसके अतिरिक्त भारत द्वारा उठाए गए कई मुद्दों जैसे-आयात की सीमा, उत्पाद की उत्पत्ति का स्थान, डेटा सुरक्षा और आधार वर्ष आदि पर भी सहमति नहीं बन सकी।
- गौरतलब है कि RCEP समझौते के तहत भारत द्वारा 'रूल्स ऑफ ओरिजिन' (Rules of Origin) को सख्त बनाने और ऑटो ट्रिगर तंत्र को मज़बूत करने पर ज़ोर दिया गया था, हालाँकि समझौते में इन मुद्दों पर भारत की चिंताओं को दूर करने का अधिक प्रयास नहीं किया गया।
  - रूल्स ऑफ ओरिजिन, किसी उत्पाद की राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय स्रोत के निर्धारण के लिये एक महत्त्वपूर्ण मापदंड है। कई मामलों में आयात की गई वस्तुओं पर शुल्क और प्रतिबंध का निर्धारण उनकी राष्ट्रीयता के आधार पर किया जाता है।
  - ऑटो ट्रिगर तंत्र आयात शुल्क में कमी या उसे पूर्णतया समाप्त करने की दशा में आयात में होने वाली अप्रत्याशित वृद्धि को रोकने के लिये एक व्यवस्था है।
  - पिछले कुछ वर्षों में चीन द्वारा दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार समझौता (SAFTA) और बांग्लादेश के ड्यूटी फ्री रूट का लाभ लेकर भारत में कपड़ों के साथ अन्य कई उत्पादों को अत्यधिक मात्रा में पहुँचाया गया है। ऐसे में रूल्स ऑफ ओरिजिन और ऑटो ट्रिगर तंत्र के माध्यम से चीनी उत्पादों के आयात पर नियंत्रण लगाया जा सकता है।
- इसके अतिरिक्त भारत द्वारा टैरिफ कटौती के लिये वर्ष 2013 की बजाय वर्ष 2019 को आधार वर्ष के रूप में स्वीकार करने की मांग की गई थी। क्योंकि वर्ष 2014-19 के बीच भारत द्वारा कई उत्पादों पर आयात शुल्क में बढ़ोतरी की गई है।
- साथ ही भारत द्वारा अपने बाज़ार को खोलने के बदले अन्य देशों को भारतीय श्रमिकों और सेवा क्षेत्र के लिये नियमों में ढील देने की मांग की गई थी।
- इस समझौते में चीन के साथ तनाव के बीच एक चीनी नेतृत्त्व वाले समझौते में शामिल होना भारत के लिये नई बाधाएँ खड़ी कर सकता है।

RCEP से अलग होने का प्रभाव:

- RCEP से अलग होने के निर्णय के साथ भारत ने क्षेत्र के बड़े बाज़ारों तक अपनी पहुँच बढ़ाने का एक मौका खो दिया है।
- भारत के इस निर्णय के बाद RCEP सदस्यों के साथ भारत के द्विपक्षीय व्यापार संबंधों के प्रभावित होने की आशंका भी बढ़ गई है क्योंकि इस समूह में शामिल अधिकांश देश RCEP के अंदर अपने व्यापार को मज़बूत करने को अधिक प्राथमिकता देंगे।
- ऑस्ट्रेलिया और जापान द्वारा भारत को RCEP में शामिल करने के कई असफल प्रयासों से इस बात की भी चिंता बनी हुई है कि भारत का निर्णय हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत-जापान-ऑस्ट्रेलिया की साझेदारी को प्रभावित कर सकता है।
- हमारे पड़ोसी देशों द्वारा भारत पर महत्त्वपूर्ण निर्णयों और योजनाओं के कार्यान्वयन में देरी का आरोप लगाया जाता रहा है। हाल के वर्षों में भारत द्वारा 'एक्ट ईस्ट नीति' पर विशेष बल देने के बावजूद RCEP से बाहर रहने का निर्णय तर्कसंगत नहीं लगता।

RCEP में शामिल होने के संभावित लाभ:

- वर्तमान में COVID-19 महामारी, अमेरिका-चीन व्यापार युद्ध और ब्रेक्ज़िट (Brexit) के कारण वैश्विक अर्थव्यवस्था में उत्पन्न हुई अनिश्चितता के बीच यह समझौता अर्थव्यवस्था को पुन: गति प्रदान करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।
- RCEP, सदस्य देशों की अर्थव्यवस्था में सुधार लाने, समावेशी विकास, रोज़गार के अवसरों का विकास और आपूर्ति श्रृंखला को मज़बूत बनाने में भी सहायक हो सकता है।
- हालाँकि इस समझौते में शामिल अन्य देशों जैसे- फिलीपींस और वियतनाम भी चीन के साथ राजनीतिक विवाद के अतिरिक्त द्विपक्षीय व्यापार में बड़े व्यापारिक घाटे का सामना कर रहे हैं, परंतु इन देशों ने वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए इस समझौते में बने रहने का निर्णय लिया है।
- RCEP में शुरुआत से ही शामिल होकर भारत समूह के महत्त्वपूर्ण नियमों के निर्धारण की निगरानी और उनमें संशोधन हेतु आवश्यक हस्तक्षेप कर सकता था।

आगे की राह:

- RCEP से अलग बने रहने की स्थिति में:
  - यदि आने वाले दिनों में भी RCEP द्वारा भारत की चिंताओं को दूर नहीं किया जाता है और भारत इस समझौते में शामिल नहीं होता है तो उस स्थिति में भारत को एशिया के प्रमुख देशों के साथ मज़बूत द्विपक्षीय व्यापार समझौते पर कार्य करना होगा, जिससे RCEP से अलग रहने के कारण होने वाले किसी भी व्यावसायिक नुकसान से बचा जा सके।
  - साथ ही भारत को मुक्त व्यापार समझौते में शामिल देशों के साथ व्यापार घाटे को शीघ्र ही कम करने के लिये निर्यात बढ़ाने पर विशेष ध्यान देना होगा। इन देशों के अधिकारियों और आर्थिक क्षेत्र प्रतिनिधियों के साथ चर्चा के माध्यम से टैरिफ, गुणवत्ता या अन्य समस्याओं का समाधान किया जाना चाहिये।
  - भारत को अपने निर्यात में विविधता पर भी विशेष ज़ोर देना होगा, साथ ही विश्व के उन उभरते बाज़ारों में भी निर्यात को बढ़ाने पर ध्यान दिया जाना चाहिये जहाँ भारतीय उत्पादों की पहुँच अभी भी सीमित है।
  - भारत द्वारा यूरोपीय संघ और अमेरिका के साथ अपने व्यापारिक संबंधों को मज़बूत करने के साथ बिम्सटेक (BIMSTEC) जैसे समूहों के माध्यम से क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं के साथ आपूर्ति श्रृंखला को मज़बूत करने का प्रयास किया जाना चाहिये।
- RCEP में शामिल होने की स्थिति में:
  - RCEP सदस्यों द्वारा समझौते में भारत की सदस्यता का विकल्प खुला रखा गया है, ऐसे में यदि भविष्य में भारत इस समझौते में शामिल होने का निर्णय लेता है तो उसे अन्य सदस्यों के समक्ष मज़बूती से अपना पक्ष रखना होगा।
  - इस समझौते में शामिल होने के लिये भारत को अपनी अर्थव्यवस्था में बड़े सुधार करने होंगे जिससे इस समझौते का अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके।
  - हाल के वर्षों में भारत द्वारा कई व्यापक आर्थिक सुधारों को लागू किया गया है, 'व्यापार सुगमता सूचकांक' और 'वैश्विक प्रतिस्पर्द्धात्मकता सूचकांक' में अपनी स्थिति को मज़बूत करते हुए वह एक आत्मनिर्भर भारत की दिशा में आगे बढ़ा है।
  - ऐसे में यदि ये सुधार भविष्य में भारत के आधार और प्रतिस्पर्द्धी क्षमता को प्रभावी ढंग से मज़बूत करते हैं, तो भारत RCEP में शामिल होकर अपने विकास की दर को कई गुना बढ़ा सकता है।

निष्कर्ष:

वर्तमान समय में वैश्विक अर्थव्यवस्था में आई गिरावट के बीच RCEP इस चुनौती से बाहर निकलने का एक मज़बूत विकल्प प्रदान करता है। हालाँकि वर्तमान परिस्थिति में चीन, ऑस्ट्रेलिया न्यज़ीलैंड आदि देशों के बड़े उत्पादकों को भारतीय बाज़ार में पहुँच की खुली छूट देना कुछ स्थानीय उद्योगों के लिये एक बड़ी चुनौती का कारण बन सकता है। परंतु 21वीं सदी के वैश्वीकरण के इस दौर में अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा में शामिल होने के लिये इस संरक्षणवादी नीति को लंबे समय तक नहीं बनाए रखा जा सकता। ऐसे में सरकार को स्थानीय आपूर्ति श्रृंखला को मज़बूत करते हुए विकास के संभावित क्षेत्रों की पहचान कर लक्षित योजनाओं, निवेश नीति में सुधार आदि के माध्यम से अर्थव्यवस्था को मज़बूती प्रदान करने पर ध्यान देना होगा।

खाड़ी देश: बदलता परिदृश्य और संभावनाएँ

संदर्भ:

पिछले कई दशकों से खाड़ी देशों के संदर्भ में भारत के वणिकवादी दृष्टिकोण के तहत इन देशों को खनिज तेल और प्रवासी श्रमिकों के लिये रोज़गार के स्रोत के रूप में ही देखा गया है। हालाँकि पिछले कुछ वर्षों के दौरान खाड़ी क्षेत्र में हुए बड़े राजनीतिक और आर्थिक बदलावों के परिणामस्वरूप आर्थिक और सामरिक दृष्टि से वैश्विक राजनीति में खाड़ी देशों की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण हुई है। गौरतलब है कि भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के पिछले 6 वर्षों से अधिक समय के कार्यकाल के दौरान खाड़ी देशों और हिंद महासागर को भारत की विदेशी नीति की रणनीतिक प्राथमिकताओं में सबसे ऊपर रखा गया है। ऐसे में इस सप्ताह भारतीय विदेश मंत्री की बहरीन और संयुक्त अरब अमीरात या यूएई (UAE) की यात्रा खाड़ी क्षेत्र में हो रहे संरचनात्मक परिवर्तनों और हिंद महासागर में इसके बढ़ते प्रभाव की समीक्षा का उपयुक्त अवसर प्रदान करेगा।

खाड़ी देश:

- खाड़ी देशों से आशय सामान्यतय: 'खाड़ी सहयोग परिषद' (Gulf Cooperation Council-GCC) के 6 संस्थापक सदस्य देशों से है। इनमें कुवैत, ओमान, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, कतर और बहरीन शामिल हैं।
- इस समूह में शामिल सभी देश फारस की खाड़ी से अपनी सीमा साझा करते हैं और इन देशों में किसी न किसी रूप में राजशाही का शासन लागू है।
- गौरतलब है ईरान और इराक भी फारस की खाड़ी से अपनी सीमाएँ साझा करते हैं परंतु ये दोनों देश GCC के सदस्य नहीं हैं।

पृष्ठभूमि:

- खाड़ी देशों के साथ भारत के संबंध मुख्य रूप से कच्चे तेल के व्यापार और भारतीय प्रवासी श्रमिकों की आवाजाही तक ही सीमित रहे हैं।
- भारत का संकीर्ण नौकरशाही दृष्टिकोण खाड़ी क्षेत्र के हितों के साथ अपने राजनीतिक संबंधों को आगे ले जाने में सफल नहीं रहा।
- पूर्व में भी खाड़ी देशों ने कई मौकों पर पकिस्तान के संदर्भ के बिना ही भारत के साथ स्वतंत्र और मज़बूत राजनीतिक संबंध स्थापित करने की इच्छा प्रकट की थी परंतु भारत द्वारा इस क्षेत्र को कभी भी पाकिस्तान के संदर्भ से अलग नहीं देखा गया।
- भारतीय समाज के एक बड़े वर्ग में यह अवधारण बनी हुई है कि खाड़ी के देश खनिज तेल के उत्पादन से जुड़ी कुछ अर्थव्यवस्थाएँ है जिनका प्रबंधन कुछ रूढ़िवादी शासकों द्वारा किया जाता है, हालाँकि भारत को इन देशों द्वारा पिछले कुछ दशकों के दौरान तेल के राजस्व से खड़ी की गई वित्त पूंजी के महत्त्व को समझना बहुत ही आवश्यक है।

खाड़ी देशों और भारत के संबंधों में सुधार:

- पिछले कुछ वर्षों में खाड़ी देशों के प्रति भारत का वणिकवादी दृष्टिकोण एक राणनीतिक साझेदारी में बदल रहा है।
- प्रधानमंत्री मोदी द्वारा खाड़ी शासकों से व्यक्तिगत संबंधों को मज़बूत करने के प्रयासों ने राजनीतिक और रणनीतिक सहयोग को बढ़ाने के लिये व्यापाक संभावनाएँ प्रस्तुत की हैं।
- हालाँकि अभी भी भारत खाड़ी देशों में पूंजीवाद के उदय के बाद उत्पन्न हुए अवसरों से स्वयं को जोड़ने में पूरी तरह से सफल नहीं रहा है।

खाड़ी देशों का आर्थिक और राजनीतिक बदलाव:

- हाल के वर्षों में खाड़ी के देशों में बड़े आर्थिक और सामाजिक बदलाव देखने को मिले हैं।
- इनमें से अधिकांश देशों ने अपनी अर्थव्यवस्था को खनिज तेल उत्पादन तक ही सीमित न रखते हुए इनमें व्यापक विस्तार किया है और इनके द्वारा नवीकरणीय ऊर्जा से लेकर परिवहन, बैंकिंग और सूचना प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में निवेश किया गया है।
- खाड़ी देशों की आर्थिक नीति में हुए इस व्यापक बदलाव के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में कई बड़े व्यावसायिक समूहों और संप्रभु धन निधियों के विस्तार को कई विशेषज्ञों द्वारा 'खालीजी पूंजीवाद' (Khaleeji Capitalism) की संज्ञा दी गई है।
- खाड़ी देशों की इस वित्तीय प्रगति से मध्य पूर्व और हिंद महासागर क्षेत्र में उनके भू-राजनीतिक प्रभाव में भी वृद्धि हुई है।
- हाल के वर्षों में खाड़ी देशों के द्वारा दैनिक जीवन में अनावश्यक धार्मिक या सामाजिक हस्तक्षेप को कम करने के लिये कई सकारात्मक कदम उठाए गए हैं जैसे-महिलाओं के अधिकारों का विस्तार, धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित सुधार, सहिष्णुता को बढ़ावा देना और एक राष्ट्रीय पहचान विकसित करना जो केवल धर्म से न परिभाषित होती हो।
- हाल ही में यूएई द्वारा विदेशी उद्यमियों और श्रमिकों को आकर्षित करने के लिये कई बड़े सुधार किये गए है, जिनमें शराब के सेवन को अपराध की श्रेणी से बाहर करना, अविवाहित जोड़ों को साथ रहने की अनुमति, महिलाओं के खिलाफ ऑनर किलिंग के मामलों का अपराधीकरण, दीर्घकालिक वीज़ाकी व्यवस्था आदि।

हिंद महासागर क्षेत्र और भारत:

- पिछले 6 वर्षों के दौरान पश्चिमी हिंद महासागर के प्रति भारत के दृष्टिकोण में व्यापक बदलाव देखने को मिला है।
- इस दौरान मॉरीशस और वहाँ बड़ी संख्या में रह रहे प्रवासी भारतीयों के साथ भारत के पारंपरिक संबंधों को पुन: मज़बूत करने पर विशेष ध्यान दिया गया है।
- वर्ष 2015 में भारतीय प्रधानमंत्री की मॉरीशस और सेशेल्स यात्रा काफी समय से लंबित रही हिंद महासागर नीति की स्पष्टता तथा इन द्वीपीय देशों के रणनीतिक महत्त्व की स्वीकार्यता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रही।

- इस दौरान भारत ने फ्राँस के साथ मिलकर एक रणनीतिक समुद्री साझेदारी की शुरुआत की है।
- इसी वर्ष भारत 'हिंद महासागर आयोग' (Indian Ocean Commission) में एक पर्यवेक्षक (Observer) के रूप में शामिल हुआ है।
- साथ ही भारत 'जिबूती आचार संहिता' (DCOC) में पर्यवेक्षक के रूप में शामिल हुआ है।

भारत के लिये खाड़ी देशों का महत्त्व:

- भारत की अर्थव्यवस्था के विकास में खाड़ी देशों की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, वित्तीय वर्ष 2018-19 में भारत और खाड़ी देशों का द्विपक्षीय व्यापार लगभग 121 बिलियन अमेरिकी डॉलर का रहा, जो पिछले वित्तीय वर्ष से लगभग 17% अधिक है।
- गौरतलब है कि द्विपक्षीय व्यापार के मामले में GCC के दो देश यूएई और सऊदी अरब भारत के तीसरे और चौथे सबसे बड़े व्यापार सहयोगी हैं, इन दोनों देशों के साथ वित्तीय वर्ष 2018-19 में भारत का द्विपक्षीय व्यापार क्रमश: 60 व 34 बिलियन अमेरिकी डॉलर का रहा था।
- भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के मामले में यूएई शीर्ष 10 देशों में शामिल है।
- वर्तमान समय में ऊर्जा आपूर्ति की दृष्टि से भी भारत के लिये खाड़ी देशों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है, भारत द्वारा आयात किये जाने वाले कुल कच्चे तेल में से लगभग 34%इन्हीं देशों से आता है।
- भारत और कई खाड़ी देशों के द्वारा एक दूसरे के देश में तेल की खोज और रिफाइनरियों में भी निवेश किया गया है, उदहारण के लिये महाराष्ट्र की रत्नागिरी रिफाइनरी में 'आबू धाबी नेशनल ऑयल कंपनी' (ADNOC) और 'सऊदी अरामको' का संयुक्त निवेश, कतर निवेश प्राधिकरण द्वारा अडानी इलेक्ट्रिसिटी मुंबई लिमिटेड में 450 मिलियन अमेरिकी डॉलर के निवेश की घोषणा आदि।
- एक अनुमान के अनुसार, लगभग 9.3 मिलियन भारतीय अपनी आजीविक के लिये खाड़ी देशों में रहकर कार्य करते हैं, केवल यूएई में ही लगभग 3 मिलियन प्रवासी भारतीय श्रमिक कार्य करते हैं।
- वर्ष 2019 में खाड़ी देशों में कार्य करने वाले भारतीय श्रमिकों द्वारा 49 अरब अमेरिकी डॉलर प्रेषित धन प्राप्त हुआ जो भारत की जीडीपी का लगभग 2% है।
- भारत और GCC दोनों ही 'वित्तीय कार्रवाई कार्य बल' (FATF) के साथ अन्य कई महत्त्वपूर्ण वैश्विक मंचों के सदस्य हैं।

चुनौतियाँ:

- COVID-19 महामारी के दौरान वैश्विक स्तर पर कच्चे तेल की खपत में भारी गिरावट ने खाड़ी देशों की अर्थव्यवस्था को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। जिसके कारण बहुत से प्रवासी भारतीय श्रमिकों को भी अपनी आजीविका गंवानी पड़ी है।
- इस महामारी के कारण अर्थव्यवस्था में ही गिरावट के बीच कई खाड़ी देशों ने प्रवासी श्रमिकों की संख्या में कटौती करने का निर्णय लिया है।
- भारत द्वारा परियोजनाओं में विलंब (उदाहरण के लिये रत्नागिरी रिफाइनरी के लिये भूमि अधिग्रहण में देरी) दिपक्षीय व्यापार के लिये एक बड़ी बाधा रही है।
- गौरतलब है कि यूएई द्वारा वर्ष 2015 में भारत में 75 बिलियन डॉलर के निवेश की प्रतिबद्धता दिखाई थी, हालाँकि भारत इतने बड़े निवेश के लिये अभी तक पर्याप्त संसाधन और अवसंरचना का प्रबंध नहीं कर सका है।
- भारत और खाड़ी देशों के बीच कश्मीर मुद्दा या ऐसे कुछ अन्य स्थानीय तथा वैश्विक मुद्दों पर कुछ मतभेद रहे हैं।

समाधान:

- भारतीय विदेश मंत्री की खाड़ी देशों की आगामी यात्रा के दौरान COVID-19 महामारी के कारण उत्पन्न हुई अस्थिरता के बीच भारतीय श्रमिकों के हितों की रक्षा को सुनिश्चित करने को प्राथमिकता देनी होगी। साथ ही इन देशों में कार्य कर रहे लोगों के लिये कार्य क्षेत्र के परिवेश मंर सुधार आदि समस्याओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये।
- खाड़ी देशों द्वारा कच्छे तेल के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में निवेश की इच्छा प्रकट की गई है ऐसे में भारत द्वारा इन देशों के साथ विभिन्न क्षेत्रों में लंबी अवधि की आर्थिक साझेदारी स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिये।

- खाड़ी देश का निवेश हमारे आत्मनिर्भर भारत अभियान को मज़बूती प्रदान करने में सहायक हो सकता है, परंतु इसके लिये संभावित निवेश और अवसंरचना के अंतर को शीघ्र ही दूर करना होगा।
- खाड़ी क्षेत्र के देशों ने अपनी आर्थिक शक्ति के माध्यम से मध्यपूर्व के राजनीतिक परिवेश में अपने प्रभाव को मज़बूत करने के लिये किया है और इसका एक उदाहरण एब्राहम एकार्ड के तहत अरब-इज़राइल संबंधों में सुधार के रूप में देखा जा सकता है। यूएई और बहरीन द्वारा इज़राइल के साथ आर्थिक संबंधों की बहाली भारत के लिये एक सकारात्मक संकेत है।
- क्षेत्रीय विवादों के समाधान (अफगानिस्तान, लेबनान,लीबिया आदि) में खाड़ी देशों के बढ़ते प्रभुत्त्व पर भी ध्यान देना बहुत आवश्यक है साथ ही हिंद महासागर में भी इन देशों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है।
- यूएई वर्तमान में हिंद महासागर रिम एसोसिएशन (IORA) की अध्यक्षता करता है और उसने भारत के साथ संयुक्त बुनियादी ढांचा परियोजनाओं के विकास की भी इच्छा व्यक्त की है।
- भारत को हिंद महासागर के संदर्भ में संपर्क और सुरक्षा से जुड़ी क्षेत्रीय पहलों में व्यापकता लाने की आवश्यकता है तथा यूएई इसमें सहयोग का एक उपयुक्त विकल्प हो सकता है।

निष्कर्ष:

भारत द्वारा लंबे समय से खाड़ी के देशों को चरमपंथी धार्मिक विचारधारा के एक ऐसे स्रोत के रूप में देखा गया है, जिसने उपमहाद्वीप के साथ विश्व के कई क्षेत्रों में अस्थिरता लाने का कार्य किया है। हालाँकि वर्तमान में जब खाड़ी के अधिकांश शासकों द्वारा बड़े बदलावों के साथ अपने देश के साथ क्षेत्र में राजनीतिक और सामाजिक सुधारों के प्रयास किये जा रहे है तो ऐसे समय में भारत को अपना सहयोग देना चाहिये। साथ ही भारत को खाड़ी देशों से आने वाले निवेश को बढाने के लिये स्थानीय अवसंरचना तंत्र के विकास पर विशेष ध्यान देना होगा।

The Vision

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

विद्युत चालित वाहनों का विकास

संदर्भ:

हाल ही में यूनाइटेड किंगडम (UK) की सरकार ने वर्ष 2030 से अपने देश में नए पेट्रोल और डीज़ल चालित वाहनों की बिक्री को प्रतिबंधित करने का निर्णय लिया है। साथ ही इस ग्रीन एजेंडे के तहत यूके सरकार द्वारा देश में इलेक्ट्रिक वाहनों या ईवी (Electric Vehicle- EV) के लिये एक सक्षम बुनियादी ढाँचे की स्थापना का प्रयास किया जा रहा है। यूके सरकार का यह बड़ा कदम विश्व में उर्जा को लेकर चलाए जा रहे हरित आंदोलन की लहर पर एक व्यापक प्रभाव डाल सकता है। भारत में भी सरकार जीवाश्म ईंधन से चलने वाले वाहनों को बदलने के लिये उत्सुक है। इसकी शुरुआत वर्ष 2017 में सरकार द्वारा वर्ष 2030 तक पूर्णरूप से 100% इलेक्ट्रिक कारों के एक महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य के निर्धारण के साथ की गई। हालाँकि, ऑटोमोबाइल उद्योग के प्रतिरोध और भारी संख्या में नौकरियों की क्षति की आशंका के कारण सरकार को अपने लक्ष्य कम करने के लिये विवश होना पड़ा। परंतु अभी भी ईवी अवसंरचना तंत्र की स्थापना में सरकार के प्रत्यक्ष समर्थन और उद्योग तथा ग्राहकों को आर्थिक सहायता प्रदान किये बगैर ऑटोमोबाइल क्षेत्र में कोई बड़ा बदलाव लाना बहुत ही कठिन होगा।

इलेक्ट्रिक वाहनों की आवश्यकता क्यों?

- प्रदूषण नियंत्रण: 'अंतर्राष्ट्रीय स्वच्छ परिवहन परिषद' (International Council for Clean Transportation-ICCT) के अनुसार, वाहनों के धुएँ से होने वाला प्रदूषण वर्ष 2015 में भारत में लगभग 74,000 असामयिक मौतों का कारण बना।
  - इसके साथ ही विश्व के सबसे अधिक प्रदूषित शहरों की सूची में भारत के कई शहरों के नाम शामिल हैं। उदाहरण के लिये, दिल्ली, कानपुर आदि।
- जलवायु परिवर्तन: दिसंबर 2019 में, पर्यावरण थिंक टैंक 'जर्मनवाच' द्वारा जारी 'वैश्विक जलवायु जोखिम सूचकांक 2020' (Global Climate Risk Index 2020) के अनुसार, भारत में जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों में वृद्धि देखने को मिली है। इस सूचकांक में वैश्विक सुभेद्यता के मामले में वर्ष 2017 (14वाँ स्थान) की तुलना में भारत के रैंक में गिरावट हुई है (वर्ष 2018 मं 5 वाँ स्थान)।
  - देश में जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों के कारण होने वाली जान-माल की क्षति भारत को जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता को कम करने हेतु इलेक्ट्रिक वाहनों को प्राथमिकता देने के लिये और अधिक कारण प्रदान करती है।
- संधारणीय ऊर्जा विकल्प: परिवहन के लिये इलेक्ट्रिक वाहनों को प्राथमिकता देकर भारत को ऊर्जा कमी की चुनौती को हल करते हुए अन्य देशों से आयात किये जाने वाले खनिज तेल पर अपनी निर्भरता को कम करने और ऊर्जा के नवीकरणीय तथा स्वच्छ स्रोतों की ओर बढ़ने में सहायता प्राप्त होगी।

चुनौतियाँ:

- बैटरी सेल विनिर्माण का अभाव: भारत में प्राथमिक बैटरी सेल विनिर्माण के क्षेत्र में बहुत अधिक प्रगति नहीं (पूर्ण अनुपस्थिति) हुई है, जो बड़े पैमाने पर इलेक्ट्रिक वाहनों को अपनाए जाने और बैटरी के लिये विदेशी कंपनियों पर निर्भर रहने की स्थिति में एक बड़े व्यापार घाटे का कारण बन सकता है।
- वर्तमान में भारत के अधिकांश निर्माता जापान, चीन, कोरिया और यूरोप से आयातित बैटरी पर निर्भर हैं।
- चार्जिंग अवसंरचना का निर्माण: गौरतलब है कि वर्तमान में पेट्रोल पंप की संख्या के मामले में अमेरिका और चीन के बाद भारत का विश्व में तीसरा स्थान (लगभग 69,000 पेट्रोल पंप) है, जबकि देश में इलेक्ट्रिक वाहनों के लिये चार्जिंग स्टेशनों की संख्या बहुत ही कम है। ऐसे में इलेक्ट्रिक वाहनों के प्रयोग को बढ़ावा देने हेतु चार्जिंग अवसंरचना का विकास एक बड़ी चुनौती होगा। इसके लिये मौजूदा पेट्रोल पंपों के अलावा लोगों के घरों के नजदीक वैकल्पिक स्थानों पर चार्जिंग स्टेशनों की स्थापना की आवश्यकता होगी।

- सीमित ग्रिड क्षमता: नीति आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, भारतीय ईवी बाज़ार को वर्ष 2022 तक न्यूनतम 10 GW ऊर्जा की आवश्यकता होगी, जिसे वर्ष 2025 तक लगभग 50 GW तक विस्तारित करना होगा।
  - हालाँकि वर्तमान में भारत अपनी अन्य सभी बढ़ती ऊर्जा ज़रूरतों के लिये प्रतिवर्ष मात्र 20 GW अतिरिक्त ऊर्जा अपने ग्रिड में जोड़ने में सक्षम रहा है। ऐसे में केवल ईवी के लिये ही 10GW अतिरिक्त क्षमता की आवश्यकता को पूरा कर पाना एक बड़ी चुनौती होगी।
- स्थानीय मुद्दे: परिवहन से जुड़े निर्णयों को लोगों के करीब लाना आवश्यक है। हालाँकि वहनीयता, बुनियादी ढाँचे और पारगमन प्रणालियों की उपलब्धता जैसी परिवहन चुनौतियाँ स्थानीयकृत मुद्दे हैं, जो इलेक्ट्रिक वाहनों के मानकीकरण को बाधित करते हैं।
  - इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि भारत के पास चीन की तरह इस क्षेत्र में मज़बूत बुनियादी ढाँचा या आवश्यक वित्तीय संसाधन नहीं है, ऐसे में इलेक्ट्रिक वाहनों के निर्माण में प्रतिस्पर्द्धात्मक लाभ या उनके लिये एक बाज़ार खड़ा करना भी एक बड़ी चुनौती होगी।

भारत सरकार की वर्तमान नीतियाँ :

- फेम इंडिया योजना: सरकार द्वारा फेम इंडिया योजना [Faster Adoption and Manufacturing of (Hybrid and) Electric Vehicles- FAME] के माध्यम से वर्ष 2030 तक भारतीय परिवहन क्षेत्र में इलेक्ट्रिक वाहनों की भागीदारी को बढ़ाकर 30% करने का लक्ष्य रखा गया है।
  - यदि वर्ष 2030 तक इस योजना के तहत निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त कर लिया जाता है, तो इन इलेक्ट्रिक वाहनों के जीवनकाल के दौरान 846 मिलियन टन CO_2 उत्सर्जन की अनुमानित बचत हो सकेगी।
- आर्थिक प्रोत्साहन: सरकार द्वारा इलेक्ट्रिक वाहनों के उत्पादन, खरीद और चार्जिंग अवसंरचना को मज़बूत बनाने के लिये आयकर छूट, सीमा शुल्क से छूट, आदि के रूप में कई प्रकार से आर्थिक प्रोत्साहन देने का प्रयास किया गया है।

आगे की राह:

- ईवी के क्षेत्र में शोध और विकास को बढ़ावा: भारतीय बाज़ार में इलेक्ट्रिक वाहनों से जुडी ऐसी स्वदेशी प्रौद्योगिकियों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है जो सामरिक तथा आर्थिक दोनों दृष्टिकोण से भारत के लिये अनुकूल हैं।
  - गौरतलब है कि इलेक्ट्रिक वाहनों की कीमतों को नीचे लाने के लिये स्थानीय अनुसंधान और विकास में निवेश करना बहुत ही आवश्यक है, ऐसे में स्थानीय तकनीकों संस्थानों/विश्वविद्यालयों और मौजूदा औद्योगिक हब को इस दिशा में बढ़ावा दिया जाना चाहिये।
  - भारत को इलेक्ट्रिक वाहनों के निर्माण में नवीनतम तकनीकों को अपनाने के लिये यूके जैसे देशों के साथ मिलकर काम करना चाहिये।
- जन जागरूकता: किसी भी समाज में एक पुरानी प्रथा को तोड़ते हुए नए उपभोक्ता व्यवहार की स्थापना हमेशा से ही चुनौतीपूर्ण रहा है, भारतीय बाज़ार में इलेक्ट्रिक वाहनों को बढ़ावा देने के लिये लोगों को इससे जुड़े सभी पहलुओं (प्रदूषण, ईवी से जुड़े दुष्प्रचार आदि) के बारे में बताने के लिये व्यापक जागरूकता अभियानों की आवश्यकता होगी।
- व्यावहारिक विद्युत मूल्य निर्धारण: वर्तमान में बिजली की बड़ी हुई कीमतों को देखते हुए कहा जा सकता है कि यदि भविष्य में भी देश में विद्युत उत्पादन कोल आधारित तापीय विद्युत संयंत्रों पर आधारित रहता है तो घरों पर वाहनों की चार्जिंग एक बड़ी समस्या बन सकती है।
  - ऐसे में देश में इलेक्ट्रिक कारों के उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिये विद्युत् उत्पादन परिदृश्य में भी एक बड़े बदलाव की आवश्यकता होगी।
  - इस संदर्भ में, वर्ष 2025 तक भारत के सबसे बड़े सौर ऊर्जा बाज़ार के रूप में उभरने को एक सकारात्मक संकेत के रूप में देखा जा सकता है।
  - सौर ऊर्जा पर ध्यान देते हुए ग्रिड क्षमता को बढ़ाकर वाहनों की चार्जिंग के लिये पर्याप्त बुनियादी ढाँचे के विकास को को सुनिश्चित किया जा सकता है।

बहुपक्षीय प्रयास:

- देश में इलेक्ट्रिक वाहनों की आपूर्ति श्रृंखला को मज़बूत बनाने हेतु इसके विनिर्माण के लिये सब्सिडी प्रदान करने से ईवी के विकास को बढ़ावा मिलेगा।

नोट :

- इसके साथ ही इलेक्ट्रिक वाहनों के विकास को बढ़ावा देने के साथ इस प्रक्रिया को पर्यावरण के अनुकूल बनाने के लिये वाहनों में लगी बैटरी के पुनर्चक्रण या रिसाइकिलिंग (Recycling) पर भी विशेष ज़ोर देना होगा।

निष्कर्ष:

लगभग 1.3 बिलियन की आबादी वाले देश में पारंपरिक परिवहन से इलेक्ट्रिक वाहनों की ओर स्थानांतरण एक आसान कार्य नहीं है। ऐसे में देश में इलेक्ट्रिक वाहनों को बढ़ावा देने के लिये एक मज़बूत दृष्टिकोण के साथ राज्य की नीतियों की तुलना के लिये एक निष्पक्ष रूपरेखा और सार्वजनिक-निजी सहयोग को प्रोत्साहित करने के लिये एक मंच स्थापित किया जाना बहुत ही आवश्यक होगा।

दृष्टि The Vision

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण

जैव विविधता शासन

संदर्भ:

पिछले दशकों में विकसित और विकासशील दोनों ही प्रकार के देशों में व्यापक जैव विविधता ह्रास देखने को मिला है। जैव विविधता में होने वाली इस तीव्र गिरावट ने इन देशों के बीच 'जैविक विविधता अभिसमय' (Convention of Biological Diversity- CBD) जैसी वार्ताओं और समझौतों की एक श्रृंखला को जन्म दिया है।

सीबीडी के माध्यम से पहली बार वैश्विक स्तर पर 'पर्यावरणीय नैतिकता' (Environmental Ethics) की नींव रखी गई, जिसके माध्यम से देशों के अधिकारों को उनके समुदायों के पारंपरिक ज्ञान तथा आनुवंशिक संसाधनों के आधार पर मान्यता दी गई ताकि उन्हें शोषण से बचाया जा सके।

सीबीडी के तहत दिशा-निर्देशों को ध्यान में रखते हुए अधिकांश देशों द्वारा वर्ष 2010 में जापान में सीबीडी- नागोया पर हस्ताक्षर किये और नागोया प्रोटोकॉल को अपनाया गया, जिसका उद्देश्य सीबीडी के 'निष्पक्ष और न्यायसंगत साझाकरण' (Fair and Equitable Sharing प्रावधानों को प्रभावी बनाना था।

वार्ताओं और समझौतों की इस श्रृंखला के एक दशक के बाद भी दुनिया के अधिकांश जैव-प्रौद्योगिकी आधारित पेटेंटों पर विकसित देशों का स्वामित्त्व है, जबकि मेगा-बायोडायवर्सिटी वाले अधिकांश देश विकासशील हैं। यह एक ऐसी 'जैव विविधता शासन' प्रणाली की आवश्यकता के महत्त्व को उजागर करता है जिसमें आनुवंशिक संसाधनों के 'उचित और न्यायसंगत साझाकरण' सुनिश्चित किया जा सके।

जैव विविधता शासन (Biodiversity Governance):

- जैव विविधता शासन के माध्यम से सभी हितधारकों की नीति निर्धारण और निर्णयन प्रक्रिया में भागीदारी पर बल दिया जाता है ताकि एक प्रभावी, कानून के शासन पर आधारित तथा पारदर्शी प्रणाली अपनाई जा सके, जो आनुवंशिक संसाधनों के निष्पक्ष और न्यायसंगत साझाकरण की गारंटी देता हो।

वैश्विक स्तर पर जैव विविधता शासन:

- वर्ष 1992 में रियो पृथ्वी शिखर सम्मेलन में 'संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन फ्रेमवर्क सम्मेलन' (UNFCCC) और 'संयुक्त राष्ट्र मरुस्थलीकरण रोकथाम अभिसमय' (UNCCD) के साथ ही 'जैव विविधता अभिसमय' (CBD) को अपनाया गया।
- CBD को मुख्यत: तीन उद्देश्यों- जैविक विविधता का संरक्षण, इसके घटकों का स्थायी उपयोग और आनुवंशिक संसाधनों के 'निष्पक्ष एवं न्यायसंगत साझाकरण' के लिये डिज़ाइन किया गया था।
- वर्ष 2010 में नागोया में CBD की कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टीज़ (COP)-10 में वर्ष 2011-2020 हेतु 'जैव विविधता के लिये रणनीतिक योजना' को अपनाया गया। इसमें पहली बार विषय विशिष्ट 20 जैव विविधता लक्ष्यों- जिन्हें आइची जैव विविधता लक्ष्य के रूप में भी जाना जाता है, को अपनाया गया।
- यह योजना संयुक्त राष्ट्र प्रणाली सहित संपूर्ण जैव विविधता प्रबंधन, संरक्षण और नीति तथा विकास कार्य में संलग्न अन्य सभी हितधारकों और भागीदारों के लिये जैव विविधता पर एक व्यापक रूपरेखा प्रदान करती है।
- वर्ष में 2010 में सभी पार्टियों द्वारा 'राष्ट्रीय जैव विविधता रणनीतियों और कार्य योजनाओं' (National Biodiversity Strategies and Action Plans- NBSAPs) को वर्ष 2015 तक आइची लक्ष्यों के अनुरूप बदलने और इन्हें नीतिगत उपकरणों के रूप में अपनाने पर सहमति व्यक्त की गई थी।
  - जैव विविधता हेतु रणनीतिक योजना एवं इसके 20 'आइची लक्ष्यों' (20 Aichi Targets) के अनुरूप 'राष्ट्रीय जैव विविधता रणनीति और कार्य-योजना (NBSAP)- 2008 को अद्यतन करने के लिये वर्ष 2011 में विशिष्ट विषय केंद्रित अंतर-मंत्रिस्तरीय बैठक एवं हितधारकों से व्यापक परामर्श किया गया।

भारत में जैव विविधता शासन:

- भारत का 'जैविक विविधता अधिनियम' (Biological Diversity Act)- 2002, नागोया प्रोटोकॉल के उद्देश्यों के अनुरूप है।
- इस अधिनियम को भारत में जैव विविधता के संरक्षण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम के रूप में देखा गया था, क्योंकि इसमें प्राकृतिक संसाधनों पर देशों के संप्रभु अधिकारों को मान्यता दी गई थी।
- अधिनियम के माध्यम से स्थानीय आबादी तक 'पहुँच और लाभ साझाकरण' (Access and Benefit Sharing-ABS) पर बल दिया गया।
- अधिनियम के माध्यम से विकेंद्रीकृत तरीके से जैव संसाधनों के प्रबंधन के मुद्दों का समाधान का प्रयास किया गया।
- अधिनियम के तहत त्रि-स्तरीय संरचनाओं की परिकल्पना की गई है:
  - राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण (NBA)।
  - राज्य स्तर पर राज्य जैव विविधता बोर्ड (SSB)।
  - स्थानीय स्तर पर जैव विविधता प्रबंधन समितियाँ (BMCs)।
- अधिनियम सक्षम अधिकारियों के विशिष्ट अनुमोदन के बिना भारत में उत्पन्न 'आनुवंशिक सामग्री के हस्तांतरण' (Transfer of Genetic Material) पर प्रतिबंध लगाता है।
- अधिनियम जैव विविधता से संबंधित ज्ञान पर बौद्धिक संपदा का दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति के संबंध में देश के पक्ष को मज़बूत करता है।

जैव विविधता शासन से संबद्ध मुद्दे:

कृषि और पारंपरिक प्रथाओं का बहिष्करण:

- नागोया प्रोटोकॉल के अनुसार, प्रत्येक भागीदार देश खाद्य सुरक्षा और कृषि के लिये आनुवंशिक संसाधनों के महत्त्व एवं भूमिका से संबंधित मुद्दों पर विचार करेगा।
- इस प्रकार पारंपरिक कृषि और प्रथाओं को लाभ एवं साझाकरण के दायरे से छूट दी गई है। इसके कारण भारत अपने आनुवंशिक संसाधनों और संबद्ध पारंपरिक ज्ञान के दुरुपयोग या जैव-चोरी (Bio-piracy) का शिकार हुआ है। इसके प्रमुख उदाहरणों में नीम और हल्दी शामिल हैं।
- इसके अलावा किसानों के पारंपरिक बौद्धिक संपदा अधिकारों की सुरक्षा बाहरी एजेंसियों से कराना एक चुनौतीपूर्ण कार्य होगा।

पारंपरिक प्रजनन प्रणाली का क्षरण:

- बढ़ते औद्योगीकरण के साथ-साथ व्यावसायिक कृषि और अधिक कुशल नस्लों की मांग भी बढ़ी है। इसके कारण धीरे-धीरे पारंपरिक प्रजनन प्रणाली (Traditional Breeding Systems) का क्षरण हो रहा है, जिससे कृषि जैव विविधता में कमी आई है।
- इसके अलावा प्राचीन प्रजनन प्रणालियों से जुड़े पारंपरिक ज्ञान में भी लगातार कमी देखी गई है।

पशु आधारित आनुवंशिक संसाधनों को पर्याप्त सुरक्षा नहीं:

- फसल आधारित आनुवांशिक संसाधनों तक पहुँच को नागोया प्रोटोकॉल के तहत शामिल नहीं किया गया है परंतु इसे 'खाद्य और कृषि से संबंधित पादप आनुवंशिक संसाधन पर अंतर्राष्ट्रीय संधि' (International Treaty on Plant Genetic Resources for Food and Agriculture) के तहत संरक्षित किया गया है।
- हालाँकि पशु आनुवंशिक संसाधनों के लिये ऐसी कोई प्रणाली नहीं अपनाई गई है।

पारंपरिक ज्ञान को मान्यता नहीं:

- स्थानीय जैव विविधता के संरक्षण में मुख्य बाधा पारंपरिक ज्ञान की मान्यता का अभाव और स्थानीय समुदायों के ज्ञान की रक्षा के खिलाफ कानूनी संरक्षण की कमी है।

नोट :

'खाद्य और कृषि संबंधित पादप आनुवंशिक संसाधन पर अंतर्राष्ट्रीय संधि' (ITPGRFA):

- ITPGRFA जिसे 'अंतर्राष्ट्रीय बीज संधि' (International Seed Treaty) के रूप में जाना जाता है, CBD के साथ एक व्यापक अंतरराष्ट्रीय समझौता है।
- इसका उद्देश्य खाद्य और कृषि के लिये दुनिया के पादप आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण, विनियमन और स्थायी उपयोग के माध्यम से खाद्य सुरक्षा की गारंटी देना तथा इसके उपयोग से प्राप्त होने वाले लाभ को उचित और समान रूप से साझा करना है।

आगे की राह:

कृषि समाज को प्रोत्साहन:

- परंपरागत रूप से भारत में अधिकांश कृषक समाजों की फसल संरक्षण प्रणालियाँ उनके सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था के साथ एकीकृत हैं। इससे इन प्रजातियों के संरक्षण में मदद मिलती है। अत: ऐसे कृषक समाजों की कृषि प्रणालियों के संवर्द्धन और संरक्षण की आवश्यकता है।

अंतर्राष्ट्रीय संधियों का एकीकरण:

- नागोया प्रोटोकॉल के 'पहुँच और लाभ साझाकरण' (ABS) जैसे प्रावधानों का स्वतंत्र कार्यान्वयन संभव नहीं है, अत: इन्हें अन्य अंतर्राष्ट्रीय संधियों के साथ लागू किया जाना चाहिये।
- 'खाद्य और कृषि से संबंधित पादप आनुवंशिक संसाधन पर अंतर्राष्ट्रीय संधि' (ITPGRFA) और 'पहुँच तथा लाभ साझाकरण' के बीच समन्वय के लिये इनके विधायी, प्रशासनिक और नीतिगत उपायों पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है।

पीपुल्स बायोडायवर्सिटी रजिस्टर (PBR):

- PBR में जैव विविधता संसाधनों की स्थिति, उपयोग, इतिहास, हो रहे परिवर्तनों और लोक ज्ञान तथा इन संसाधनों को किस प्रकार प्रबंधित किया जा सकता है इसके बारे में लोगों की धारणाओं का दस्तावेज़ीकरण किया जाना चाहिये।
- PBR किसानों और समुदायों के अधिकारों को संरक्षित करने में उपयोगी हो सकता है।

औद्योगिक संबद्धता:

- ABS जैसे प्रावधानों का 'कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी' (CSR) जैसे कानूनों के साथ एकीकरण उन उद्योगों के लिये फायदेमंद हो सकता है जो जैविक संसाधनों के उपयोग से अर्जित लाभ को स्थानीय समुदायों के साथ साझा करना चाहते हैं।

निष्कर्ष:

- भारत एक प्रमुख मेगा-बायोडायवर्सिटी वाला देश है। भारत में वनस्पतियों और जीवों से संबंधित आनुवंशिक संसाधनों का विशाल भंडार मौजूद है। इसलिये मानव जाति के विकास तथा उपलब्ध संसाधनों के एकीकरण का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है।
- जैव विविधता शासन को इस प्रकार सुनिश्चित किया जा सके जिससे जैव संसाधनों के ज्ञान का लाभ पारंपरिक समुदायों को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हो सके।

जलवायु परिवर्तन से निपटने में वनों की भूमिका

संदर्भ:

पिछले माह संयुक्त राष्ट्र महासभा की 75वीं वर्षगांठ के अवसर पर संयुक्त राष्ट्र जैव विविधता शिखर सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्त्व करते हुए केंद्रीय पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्री ने वर्ष 2030 तक बंजर तथा वनों की कटाई वाली 2.6 करोड़ हेक्टेयर भूमि को पुनर्स्थापित करने की भारत की प्रतिबद्धता को दोहराया था। वर्तमान में जलवायु परिवर्तन और वैश्विक तापमान में वृद्धि के कारण जैव विविधता को हो रही क्षति को रोकने के लिये प्रदूषण तथा उत्सर्जन को कम करने के प्रयासों के साथ पारिस्थितिकी तंत्र में सुधार लाने पर विशेष ध्यान दिया जाना बहुत ही आवश्यक है। वर्ष 2021-30 को 'संयुक्त राष्ट्र पारिस्थितिकी तंत्र पुनर्बहाली दशक' (UN Decade of Ecosystem Restoration-UNCCD) के रूप में घोषित किये जाने और 'पोस्ट-2020 बायोडायवर्सिटी फ्रेमवर्क' (Post-2020 Biodiversity Framework) की तैयारी के बीच आने वाला दशक विभिन्न मानवीय तथा गैर-मानवीय गतिविधियों से प्रभावित हुए स्थलीय एवं जलीय पारिस्थितिकी तंत्रों की पुनर्बहाली के प्रयासों में कई गुना वृद्धि की मांग करता है।

वन परिदृश्य की पुनर्बहाली (Forest Landscape Restoration-FLR):

- FLR पारिस्थितिकी कार्यक्षमता को पुन: प्राप्त करने, वनोन्मूलन से प्रभावित क्षेत्रों में मानव कल्याण को बढ़ावा देने और भिन्न-भिन्न भू-उपयोग से संबंधित सभी हितधारकों के लिये वस्तुओं एवं सेवाओं की एक विस्तृत शृंखला उपलब्ध कराने की एक लंबी प्रक्रिया है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में वनों की भूमिका:

- पेड़ और अन्य वनस्पतियाँ प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से पर्यावरण से कार्बन डाइऑक्साइड को कम करने में सहायता करती हैं साथ ही मृदा भी पशुओं और पौधों से मिलने वाले जैविक कार्बन को अवशोषित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
- हालाँकि मृदा में अवशोषित इस प्रकार के कार्बन की मात्रा भूमि प्रबंधन प्रथाओं, खेती के तरीकों, मिट्टी के पोषण और तापमान के साथ बदलती रहती है।
- जलवायु परिवर्तन जैसी गंभीर चुनौती से निपटने के अलावा वन हमारे दैनिक जीवन में कई तरह से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (IUCN) की एक रिपोर्ट के अनुसार, वैश्विक स्तर पर लगभग 1.6 बिलियन लोग (वैश्विक आबादी का लगभग 25%) अपनी आजीविका के लिये वनों पर निर्भर हैं, जिनमें से बहुत से लोग विश्व के सबसे गरीब वर्ग से संबंधित हैं।
- वन प्रत्येक वर्ष स्वच्छ जल और स्वस्थ मिट्टी के अतिरिक्त लगभग 70-100 बिलियन अमेरिकी डॉलर की वस्तुएँ एवं सेवाएँ उपलब्ध कराते हैं।
- विश्व की कुल स्थलीय जैव विविधता का लगभग 80% भाग वनों से संबंधित है।

जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु किये गए प्रयास:

- पेरिस समझौते (Paris Agreement) के अनुच्छेद-5 के तहत सदस्य देशों से ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित करने हेतु वनोन्मूलन को रोकने पर विशेष ज़ोर देने की मांग की गई है।
- साथ ही यह अधिकांश देशों द्वारा 'राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान' (Nationally Determined Contribution-NDC) की प्रतिबद्धताओं में भी परिलक्षित होता है।
- गौरतलब है कि NDC में वन्य क्षेत्र के सुधारों के माध्यम से जलवायु परिवर्तन से निपटने के प्रयासों को भी शामिल किया गया है।
- जर्मनी द्वारा IUCN के साथ मिलकर वर्ष 2011 में 'बॉन चैलेंज' (Bonn Challenge) की शुरुआत की गई जिसके तहत वर्ष 2020 तक 150 मिलियन हेक्टेयर और वर्ष 2030 तक 350 मिलियन हेक्टेयर बंजर तथा वनोन्मूलन से प्रभावित क्षेत्र की पुनर्बहाली का लक्ष्य रखा गया।
- भारत वर्ष 2015 में 'बॉन चैलेंज' की पहल में शामिल हुआ और इसके तहत भारत द्वारा 21 मिलियन हेक्टेयर बंजर तथा वनोन्मूलन से प्रभावित क्षेत्र की पुनर्बहाली की बात कही गई थी, इस लक्ष्य को सितंबर 2019 में दिल्ली में आयोजित 'मरुस्थलीकरण रोकथाम पर संयुक्त राष्ट्र अभिसमय' सम्मेलन के दौरान बढ़ाकर वर्ष 2030 तक 26 मिलियन हेक्टेयर कर दिया गया।
- इसके साथ ही भारत द्वारा NDC के तहत वर्ष 2030 तक अतिरिक्त वन एवं वृक्ष आवरण के माध्यम से 2.5 से 3 अरब टन कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य अतिरिक्त कार्बन सिंक (Carbon Sink) तैयार करने का लक्ष्य रखा गया है।

चुनौतियाँ:

- जलवायु परिवर्तन, सूखा एवं बाढ़ की घटनाओं में वृद्धि, भूस्खलन आदि के कारण उपजाऊ भूमि का तीव्र क्षरण हो रहा है।
- UNCCD के अनुसार, भोजन, चारा, ईंधन और कच्चे माल की बढ़ती मांग से भूमि पर दबाव तथा प्राकृतिक संसाधनों के लिये प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि हुई है।
- विश्व की कुल मानव आबादी का लगभग 18% और पशुओं की आबादी का 15% हिस्सा भारत में पाया जाता है जबकि विश्व के कुल भू-भाग का मात्र 2.4% हिस्सा ही भारत के अंतर्गत है, ऐसे में देश में नागरिकों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिये प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता जा रहा है।
- आंध्रप्रदेश में वर्षा की कमी के कारण किसानों की बोरवेल पर निर्भरता बढ़ती जा रही है जिससे मिट्टी की शुष्कता में भी वृद्धि देखी गई है।
- झारखंड राज्य में अनियंत्रित खनन के कारण मृदा अपरदन और जल संकट में काफी वृद्धि हुई है, केंद्रीय भू-जल बोर्ड के आँकड़ों के अनुसार, राज्य के गिरिडीह ज़िले के एक ब्लॉक में जलस्तर वर्ष 2013-17 के बीच 8 मीटर से गिरकर 10 मीटर तक पहुँच गया।

- वहीं गोवा राज्य में खनन और बढ़ते शहरीकरण तथा गुजरात में चारागाह एवं कृषि के लिये भू-अतिक्रमण के नकारात्मक प्रभाव देखने को मिले हैं।

वनोन्मूलन:

- भारत वन स्थिति रिपोर्ट- 2019 के अनुसार, पूर्वोत्तर भारत के वनावरण क्षेत्रफल में लगभग 765 वर्ग किमी. की कमी आई है। असम और त्रिपुरा को छोड़कर पूर्वोत्तर के बाकी सभी राज्यों के वनावरण क्षेत्रफल में कमी आई है।
- इस रिपोर्ट के अनुसार, राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में कुल वन क्षेत्रफल लगभग 195.44 वर्ग किमी. है, जो इसके कुल क्षेत्रफल का 13.18% ही है।
- रिपोर्ट के अनुसार, देश का कुल वन क्षेत्र 7,12,249 वर्ग किमी. का है, जो देश के भौगोलिक क्षेत्रफल का 21.67% है, गौरतलब है कि 'राष्ट्रीय वन नीति, 1988' के तहत इसे देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का कम-से-कम एक -तिहाई (□) रखने का लक्ष्य रखा गया था।
- महाराष्ट्र में प्रतिवर्ष राज्य वन विभाग से प्राप्त परमिट का उपयोग करते हुए वर्ष 2005-14 के बीच 10 लाख से अधिक वृक्ष काटे जा चुके हैं जबकि इसी दौरान लगभग 2.6 लाख पेड़ अवैध रूप से काट दिये गए।
- नगालैंड में झूम कृषि और अन्य दैनिक ज़रूरतों के लिये वनोंन्मूलन से तेज़ी से लुप्त हो रहे वानस्पतिक आवरण ने राज्य में मिट्टी के कटाव की घटनाओं में वृद्धि की है।

मरुस्थलीकरण:

- UNCCD के अनुसार, मरुस्थलीकरण प्रतिवर्ष विश्व भर में लगभग 12 मिलियन हेक्टेयर उपजाऊ भूमि को प्रभावित करता है।
- मरुस्थलीकरण से प्रभावित शुष्क भूमि न सिर्फ अपनी उपजाऊ क्षमता बल्कि जल प्रणालियों के प्रबंधन और कार्बन संरक्षित करने जैसी पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं की अपनी क्षमता को भी खो देती हैं।
- मानव इतिहास में मरुस्थलीकरण की घटना कोई नई बात नहीं है परंतु चिंता का कारण यह है कि हाल के दशकों में इसकी गति में 30-35 गुना वृद्धि देखी गई है।
- पिछले दो दशकों के दौरान विश्व में लगभग एक-चौथाई भूमि का क्षरण देखने को मिला है।
- इसरो के अहमदाबाद स्थित 'अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्र' (Space Application Centre- SAC) द्वारा वर्ष 2018 में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग 30% या 96.40 मिलियन हेक्टेयर हिस्सा भू-क्षरण से प्रभावित है।
- ऊर्जा एवं संसाधन संस्थान (TERI) की एक रिपोर्ट के अनुसार, भू-क्षरण के कारण प्रतिवर्ष सरकार को लगभग 48.8 बिलियन अमेरिकी डॉलर की क्षति होती है।

अपर्याप्त प्रतिपूरक वनीकरण:

- हाल ही में हिमधारा एनवायरमेंट रिसर्च एंड एक्शन कलेक्टिव द्वारा प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, हिमाचल प्रदेश के किन्नौर ज़िले में बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं के विकास के लिये किये गए वन व्यपवर्तन (Forest Diversion) के बदले प्रतिपूरक वनीकरण (Compensatory Afforestation) के तहत केवल 10% पौधे ही लगाए गए तथा लगाये गए पौधों की उत्तरजीविता की दर मात्र 3.6% ही थी।

समाधान:

- FSI के एक अध्ययन के अनुसार, यदि देश में प्रभावित हुए कुल वन क्षेत्र के 50% हिस्से की पुनर्स्थापना की जाती है तो वर्ष 2030 तक इससे 1.63 बिलियन टन कार्बन डाइऑक्साइड के समतुल्य कार्बन सिंक को बढ़ाया जा सकता है, जबकि 70% की पुनर्स्थापना से कार्बन सिंक में 3.39 बिलियन टन की वृद्धि की जा सकती है।
- देश में वनावरण को बढ़ाने के लिये निम्नलिखित उपायों को अपनाया जा सकता है।
    - गंभीर रूप से प्रभावित और खुले वनों (वृक्षों का घनत्त्व 10-40%) की पुनर्स्थापना।
    - बंजर भूमि का वनीकरण
    - कृषि वानिकी
    - हरित गलियारों का विकास, रेलवे लाइन, नहरों, नदियों और सड़कों के किनारे वृक्षारोपण।

- वर्तमान में भारत में वन प्रबंधन के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं, जिन्हें वन परिदृश्य की पुनर्बहाली का मार्गदर्शन करना चाहिये।
    1. जल के लिये वनों का प्रबंधन: इसके तहत भूजल पुनर्भरण को बढ़ाने के साथ-साथ नदियों और झरनों में सतही प्रवाह और उप-सतही प्रवाह को बनाए रखना शामिल है। इसके माध्यम से कई अन्य लाभ जैसे- वनाग्नि के मामलों में गिरावट आदि के लक्ष्य को भी प्राप्त किया जा सकता है।
    2. कार्बन सिंक के रूप में वनों का प्रबंधन: पेड़ पौधों द्वारा कार्बन डाईऑक्साइड के संग्रह के अतिरिक्त वन उस क्षेत्र के पारिस्थितिकी तंत्र को मज़बूत करते हैं, जिसके माध्यम से इसके विभिन्न घटक पर्यावरण में कार्बन उत्सर्जन को कम करने में सहायता करते हैं।
    3. आजीविका के लिये वनों का प्रबंधन: विश्व में लाखों लोग अपनी आजीविका के लिये प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से वनों पर निर्भर करते हैं ऐसे में नीतियों के निर्माण के दौरान वन संरक्षण और इस पर आश्रित लोगों के हितों के बीच संतुलन को बनाए रखने पर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक होगा।

आगे की राह:

- देश में वन परिदृश्य की पुनर्बहाली की पहल के प्रभावी क्रियान्वयन के लिये सभी हितधारकों के बीच इसके विभिन्न घटकों (जैसे-FLR के लिये चयनित क्षेत्र की परिभाषा और इसके चयन की प्रक्रिया, योजना की निगरानी हेतु एक मानक का निर्धारण आदि) के मामलों में समान समझ और मज़बूत समन्वय का होना बहुत ही आवश्यक है।
- वर्तमान में 'केंद्रीय पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय' के तहत बॉन चैलेंज की निगरानी के लिये स्थापित समिति को इस परियोजना के मार्गदर्शन और समन्वय का कार्य दिया जा सकता है।
- योजना के क्रियान्वयन की निगरानी हेतु ग्रीन इंडिया मिशन (Green India Mission- GIM) के निगरानी फ्रेमवर्क और व्यापक संकेतकों को आधार के रूप में उपयोग किया जा सकता है।
- पिछले तीन दशकों के दौरान ज़िला और राज्य स्तरीय समन्वय समितियों के अलावा संरक्षण समिति, वन पंचायतों और ग्राम सभाओं के माध्यम से संयुक्त वन प्रबंधन के तहत जमीनी स्तर पर सभी हितधारकों को साथ लाने के लिये कई संस्थानों का विकास किया गया है, ऐसे में पुनर्बहाली के प्रयासों को स्थायित्त्व प्रदान करने के लिये सभी हितधारकों की भागीदारी के साथ उनके बीच उत्तरदायित्वों को साझा करने पर विशेष ध्यान देना होगा।

सामाजिक न्याय

भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी

संदर्भ:

वर्ष 2020 महिला अधिकारों की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण वर्ष माना जा सकता है। गौरतलब है कि यह महिला अधिकारों और समाज के विभिन्न स्तरों पर महिलाओं की भूमिका से जुड़ी दो बड़ी घटनाओं की 25वीं वर्षगाँठ का वर्ष है। इस वर्ष 'भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति' (CSWI) द्वारा संयुक्त राष्ट्र को 'समानता की ओर' या 'टुवर्डस इक्वालिटी' (Towards Equality) नामक रिपोर्ट को प्रस्तुत किये हुए लगभग 25 वर्ष पूरे हो गए हैं। इस रिपोर्ट में भारत में महिलाओं के प्रति संवेदनशील नीति निर्माण पर ध्यान केंद्रित करते हुए लैंगिक समानता पर एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान करने का प्रयास किया गया। साथ ही वर्ष 2020 में 'बीजिंग प्लेटफार्म फॉर एक्शन' की स्थापना की 25वीं वर्षगाँठ भी है, जो समाज में महिलाओं की स्थिति और सरकारों के नेतृत्त्व में उनके सशक्तीकरण के प्रयासों के विश्लेषण का एक बेंचमार्क है। पिछले दो दशकों में भारत में महिला अधिकारों की रक्षा हेतु कई बड़े प्रयास किये गए और इनके व्यापक सकारात्मक परिणाम भी देखने को मिले हैं, हालाँकि 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था के लक्ष्य की प्राप्ति के लिये भारत की अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका और इससे जुड़ी चुनौतियों की समीक्षा कर अपेक्षित नीतिगत सुधारों को अपनाना बहुत आवश्यक है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका:

- भारत में महिला रोज़गार संबंधी आँकड़े देश के आर्थिक विकास, कम प्रजनन दर और स्कूली शिक्षा की दर में वृद्धि जैसे संकेतकों से मेल नहीं खाती।
- वर्ष 2004 से वर्ष 2018 के बीच स्कूली शिक्षा के मामले में घटते लैंगिक अंतराल के विपरीत कार्य क्षेत्रों में भागीदारी के संदर्भ में लैंगिक अंतराल में भारी वृद्धि देखने को मिली।
- हाल ही में जारी 'आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (PLFS), 2018-19' के अनुसार, कार्यक्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी में भारी गिरावट देखने को मिली है।
- वर्ष 2011-19 के बीच ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यस्थलों पर महिलाओं की भागीदारी 35.8% से घटकर 26.4% ही रह गई।
- वर्ष 2019 में 'विश्व आर्थिक मंच' (World Economic Forum- WEF) की 'वैश्विक लैंगिक अंतराल रिपोर्ट' में महिलाओं की आर्थिक भागीदारी और इसके लिये उपलब्ध अवसरों के संदर्भ में भारत को 153 देशों की सूची में 149 वें स्थान पर रखा गया था।
- गौरतलब है कि इस सर्वेक्षण में भारत एकमात्र ऐसा देश था जिसमें आर्थिक भागीदारी में लैंगिक अंतराल राजनीतिक लैंगिक अंतराल से अधिक पाया गया।
- वर्ष 2019 में जारी ऑक्सफैम रिपोर्ट के अनुसार, लिंग के आधार पर वेतन के मामले में होने वाले भेदभाव के मामले में एशिया के देश सबसे प्रमुख हैं, एशिया में समान योग्यता और पद पर कार्य करने वाली महिलाओं को 34% कम वेतन प्राप्त हुआ।
- अक्तूबर 2020 में जारी आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (PLFS) रिपोर्ट के अनुसार, अक्तूबर-दिसंबर 2019 में महिला बेरोज़गारी की दर 9.8% रही जो वर्ष 2019 में जुलाई-सितंबर की तिमाही के आँकड़ों से अधिक है, गौरतलब है कि COVID-19 महामारी के बाद देशभर में बेरोज़गारी के आँकड़ों में व्यापक वृद्धि देखी गई।

असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी:

- कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी लगभग 60% है परंतु इनमें से अधिकांश भूमिहीन श्रमिक हैं जिन्हें स्वास्थ्य, सामाजिक या आर्थिक सुरक्षा से संबंधित कोई भी सुविधा नहीं प्राप्त होती है।
- वर्ष 2019 में मात्र 13% महिला किसानों के पास अपनी ज़मीन थी और वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, यह अनुपात मात्र 12.8% था।

नोट :

- इसी प्रकार विनिर्माण क्षेत्र (लगभग पूरी तरह असंगठित) में महिला श्रमिकों की भागीदारी लगभग 14% ही है।
- सेवा क्षेत्र में भी अधिकांश महिलाएँ कम आय वाली नौकरियों तक ही सीमित हैं, 'राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (NSS),2005' के अनुसार, 4.75 मिलियन घरेलू कामगारों में से 60% से अधिक महिलाएँ हैं।

कारण:

- भारत में स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान और उससे पहले भी कई सामाजिक कार्यकर्त्ताओं द्वारा महिला अधिकारों के मुद्दों को बहुत ही प्रमुखता से आगे रखा गया है।
- देश की स्वतंत्रता के बाद भी महिला अधिकारों और कार्यक्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी के संदर्भ में सामाजिक तथा राजनीतिक हस्तक्षेप जारी रहे हैं परंतु देश के विकास के साथ-साथ इस दिशा में अपेक्षित सुधार देखने को नहीं मिला है।
- भारत में कार्यक्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी में कमी के कारणों को निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर समझा जा सकता है।
  - सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि: भारत में लगभग सभी धर्मों और वर्गों के लोगों में लंबे समय से समाज की मुख्यधारा में महिलाओं की सक्रिय भूमिका को लेकर अधिक स्वीकार्यता नहीं रही है। वर्तमान में भी देश के कई हिस्सों में महिलाओं को घरेलू कामकाज या अध्यापक अथवा नर्स आदि जैसी भूमिकाओं में ही कार्य करने को प्राथमिकता दी जाती है। सामाजिक दबाब और विरोध के भय से कुछ पारंपरिक क्षेत्रों को छोड़कर आमतौर पर अन्य क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी कम ही रही है। भारतीय समाज में व्याप्त इस भेदभाव की शुरुआत बच्चे के जन्म से ही हो जाती है, इस भेदभाव को भारत में जन्म के समय लिंगानुपात में भारी असमानता [संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (United Nations Population Fund- UNFPA) के अनुमान के अनुसार, लगभग 910] के आधार पर समझा जा सकता है।
  - उच्च शिक्षा और प्रशिक्षण के अवसरों की कमी: पिछले दो दशकों में देश में प्रारंभिक शिक्षा के मामले में व्याप्त लैंगिक असमानता को दूर करने में बड़ी सफलता प्राप्त हुई है, हालाँकि उच्च शिक्षा और पेशेवर प्रशिक्षण संबंधी कार्यक्रमों में महिलाओं की भागीदारी में कमी अभी भी बनी हुई है। 'अखिल भारतीय उच्च शिक्षा सर्वेक्षण, 2018-19' की रिपोर्ट [All India Survey on Higher Education (AISHE) report] के अनुसार, प्रौद्योगिकी और तकनीकी से संबंधित पाठ्यक्रमों में नामांकित पुरुष छात्रों (71.1%) की तुलना में महिला छात्रों (28.9%) की भागीदारी काफी कम रही।
  - संसाधनों की कमी: कार्य क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी शिक्षा और रोज़गार के अवसरों की उपलब्धता के साथ आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता पर भी निर्भर करती है। देश में अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों या छोटे शहरों में घर से कार्यस्थल की दूरी, 24 घंटे यातायात के सुरक्षित साधन, सार्वजनिक स्थलों पर प्रसाधन या अन्य आवश्यक संसाधनों का न होना और इनकी वहनीयता भी महिलाओं की भागीदारी में कमी का एक प्रमुख कारण है। इन संसाधनों की अनुपलब्धता का प्रभाव उनके स्वास्थ्य और कार्यक्षमता पर भी पड़ता है।
  - कार्यस्थलों पर भेदभाव और शोषण: कार्यस्थलों पर होने वाला भेदभाव महिलाओं के विकास में एक बड़ी बाधा रहा है, देश में सक्रिय सार्वजनिक (सेना, पुलिस आदि) और निजी क्षेत्र के अधिकांश संस्थानों में शीर्ष निर्णायक पदों पर महिला अधिकारियों की कमी इस भेदभाव का एक स्पष्ट प्रमाण है। कृषि क्षेत्र में महिलाओं की सक्रिय भूमिका अधिक होने के बावजूद भी समाज के साथ-साथ सरकार की योजनाओं में इसकी स्वीकार्यता की कमी दिखाई देती है। कार्यस्थलों पर भेदभाव और शोषण की घटनाएँ पीड़ित व्यक्ति के साथ आकांक्षी युवाओं के मनोबल को भी कमज़ोर करती हैं, हाल ही में सोशल मीडिया पर सक्रिय 'मी टू अभियान' (MeToo Movement) के तहत सामने आई महिलाओं के अनुभवों ने इस क्षेत्र में व्यापक सुधार की आवश्यकता को रेखांकित किया है।
  - नीतिगत असफलता: देश की अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करने में सरकार की नीतियाँ अधिक सफल नहीं रही हैं। इसका एक कारण भारतीय राजनीति (लगभग 13% महिला सांसद, स्वतंत्र भारत में मात्र एक महिला प्रधानमंत्री) और नीति निर्माण संबंधी अन्य महत्त्वपूर्ण पदों पर महिलाओं के प्रतिनिधित्त्व में कमी को माना जा सकता है।

महिला भागीदारी का प्रभाव:

- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (International Labour Organization-ILO) की एक रिपोर्ट के अनुसार, यदि भारत में कार्यक्षेत्र में व्याप्त लैंगिक असमानता को 25% कम कर लिया जाता है तो इससे देश की जीडीपी में 1 ट्रिलियन डॉलर तक की वृद्धि हो सकती है।

- विश्व आर्थिक मंच के अनुसार, कार्यस्थलों पर महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि से कई सामाजिक और आर्थिक लाभ देखने को मिले हैं।
- शिक्षा और रोज़गार के अवसरों में वृद्धि से महिलाओं में अपने स्वास्थ्य तथा विकास के प्रति जागरूकता के बढ़ने के साथ अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता में वृद्धि होती है। इस बदलाव का सकारात्मक प्रभाव समाज तथा देश की अर्थव्यवस्था पर भी देखने को मिलता है।
- देश की अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका को स्वीकार करते हुए बेहतर योजनाओं के क्रियान्वयन के माध्यम से गरीबी, स्वास्थ्य और आर्थिक अस्थिरता से संबंधित चुनौतियों से निपटने में सहायता प्राप्त हो सकती है।

सरकार के प्रयास:

- केंद्र सरकार द्वारा कार्यस्थल पर गर्भवती महिलाओं के हितों की रक्षा के लिये 'मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम, 2017' के माध्यम से मातृत्त्व अवकाश को 12 सप्ताह से बढ़ाकर 26 सप्ताह कर दिया गया है, इस अधिनियम को सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 में समाहित किया गया है।
- विज्ञान एवं इंजीनियरिंग के क्षेत्र में महिला शोधकर्त्ताओं को शोध एवं विकास गतिविधियों के लिये प्रोत्साहित करने हेतु केंद्र सरकार द्वारा 'सर्ब-पावर' (SERB-POWER) नामक एक योजना की शुरुआत की गई है।
- देश में 'मी टू अभियान' के बाद कार्यस्थलों पर बड़े पैमाने पर महिला शोषण के मामलों के सामने आने के बाद अक्तूबर 2018 में केंद्रीय गृह मंत्री की अध्यक्षता में मंत्रियों के समूह (Group of Ministers- GoM) का गठन किया गया, जिसने इस समस्या के समाधान हेतु अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की।
- रेल यात्रा के दौरान महिला सुरक्षा के प्रयासों को मज़बूत करने और महिलाओं में सुरक्षा की भावना जगाने के लिये 'रेलवे सुरक्षा बल' (Railway Protection Force-RPF) द्वारा 'मेरी सहेली' (Meri Saheli) नामक एक पहल की शुरुआत की गई है।

चुनौतियाँ:

- भारतीय अर्थव्यवस्था निगरानी केंद्र द्वारा हाल ही में जारी आँकड़ों के अनुसार, COVID-19 महामारी से उत्पन्न चुनौतियों के कारण अप्रैल और मई माह में 39% कामकाजी महिलाओं को अपनी नौकरी गँवानी पड़ी।
- राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के अनुसार, पुरुषों की तुलना में भारतीय महिलाओं को बिना भुगतान के घरेलू कार्यों में योगदान देना पड़ता है।
- COVID-19 के दौरान घरेलू हिंसा के मामलों में भारी वृद्धि देखी गई थी, साथ ही इस दौरान महिलाओं के लिये शिक्षा और रोज़गार की पहुँच बाधित हुई है जो पिछले कई वर्षों के दौरान इस क्षेत्र में हुए सुधार के प्रयासों पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।
- भारत में विभिन्न सार्वजनिक (शिक्षा मित्र, आशा कार्यकर्त्ता आदि) और निजी क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं को उनके कार्य के अनुरूप अपेक्षा के अनुरूप कम भुगतान दिया जाना एक बड़ी चुनौती है।
- केंद्र सरकार द्वारा हाल ही में देश के श्रम कानूनों में बड़े बदलाव किये गए हैं हालाँकि इनमें देश की अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करने, कार्यस्थलों पर महिला हितों की रक्षा आदि मुद्दों के संदर्भ में कोई विशेष सुधार नहीं किया गया है।

आगे की राह:

- वर्तमान समय में देश की अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाने के साथ, कार्यस्थलों पर व्याप्त भेदभाव और महिला सुरक्षा संबंधी चुनौतियों को दूर करने के लिये बहु-पक्षीय प्रयासों को अपनाया जाना चाहिये।
- सरकार को असंगठित क्षेत्र में कार्य कर रही महिलाओं के लिये लक्षित योजनाओं (प्रशिक्षण, सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा आदि) के साथ अर्थव्यवस्था के सभी स्तरों पर महिलाओं की भागीदारी और उनके हितों की रक्षा सुनिश्चित करने से जुड़े प्रयासों पर विशेष ध्यान देना होगा।
- कार्यस्थलों पर महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिये यातायात साधनों की पहुँच में विस्तार के साथ सार्वजनिक स्थलों पर प्रसाधन केंद्रों आदि के तंत्र को मज़बूत करना बहुत ही आवश्यक है।
- उच्च शिक्षा और पेशेवर प्रशिक्षणों में शामिल होने के लिये महिलाओं को सहयोग प्रदान करने के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा की पहुँच को मज़बूत करने पर विशेष ध्यान देना होगा। इसके साथ ही नीति निर्माण और महत्त्वपूर्ण संसाधनों के शीर्ष तंत्र में महिला प्रतिनिधित्त्व को बढ़ाने हेतु विशेष प्रयास किये जाने चाहिये।

नोट :

अंतरधार्मिक विवाह और व्यक्तिगत स्वतंत्रता

संदर्भ:

पिछले कई दशकों के दौरान समाज सुधार के बड़े प्रयासों के बावजूद आज भारत में धर्म और जाति के नाम पर होने वाले विवादों की कमी नहीं है। एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होने के बाद भी कई बार अलग-अलग धर्मों के हितों की रक्षा हेतु किये जाने वाले प्रयास उनके बीच विभाजन की रेखा को और अधिक स्पष्ट कर देते हैं। हाल ही में देश के कई राज्यों (जैसे-मध्य प्रदेश, हरियाणा, कर्नाटक और उत्तर प्रदेश) द्वारा ऐसे विवाहों को रोकने के लिये कानूनों के निर्माण की बात कही गई है जिन्हें उनके द्वारा 'लव जिहाद' की संज्ञा दी गई है। गौरतलब है कि 'लव जिहाद' के निर्धारण का न तो कोई कानूनी आधार है और न ही संवैधानिक। इसके साथ ही बिना किसी मज़बूत आधार के कानूनों के माध्यम से अंतरधार्मिक विवाह को रोकना लोगों को संविधान से प्राप्त अधिकारों का भी उल्लंघन होगा।

पृष्ठभूमि:

- वर्ष 2018 में उच्चतम न्यायालय के हादिया मामले के बाद पिछले दिनों इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अंतरधार्मिक विवाह के कई मामले सामने आए, जहाँ अलग-अलग मामलों में जन्म से हिंदू या मुस्लिम महिलाओं ने धर्मांतरण के माध्यम से दूसरे धर्म से संबंधित व्यक्ति से विवाह किया था।
- हाल ही में मध्य प्रदेश राज्य सरकार द्वारा 'लव जिहाद' की घटनाओं पर रोक लगाने के लिये 'धार्मिक स्वतंत्रता विधेयक, 2020' नामक एक विधेयक लाने की बात कही गई है।
- इसके तहत किसी से झूठ बोलकर या दबाव बनाकर उसे विवाह के लिये विवश करना पाँच वर्ष के सश्रम कारावास के रूप में दंडनीय होगा। हालाँकि यदि कोई व्यक्ति विवाह के लिये स्वेच्छा से धर्मांतरण करना चाहता है, तो उसे एक माह पहले ही इसके लिये आवेदन देना होगा।
- इसी प्रकार हरियाणा, उत्तर प्रदेश और कर्नाटक जैसे राज्यों की सरकारों द्वारा भी 'लव जिहाद' के विरुद्ध ऐसे ही कानूनों को लाने की बात कही गई है।

भारत में लागू प्रमुख विवाह कानून:

भारत में ब्रिटिश शासन के समय समान नागरिक संहिता को लागू करने का प्रयास किया गया परंतु कई समाज सुधारकों और सरकारों के प्रयासों के बाद भी कानूनों में व्याप्त धार्मिक अंतर को दूर नहीं न किया जा सका है। इसके परिणामस्वरूप देश में अलग-अलग धर्मों से जुड़े लोगों के विवाह का पंजीकरण अलग-अलग कानूनों के तहत किया जाता है, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

- हिंदू विवाह अधिनियम 1955
- मुस्लिम पर्सनल लॉ, 1937
- भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम, 1872
- पारसी विवाह और विवाह विच्छेद अधिनियम, 1936

धर्मांतरण और अंतरधार्मिक विवाह:

- भारत में यदि दो अलग-अलग धर्मों के लोग विवाह करना चाहते हैं तो वे या तो 'विशेष विवाह अधिनियम, 1954' के तहत विवाह कर सकते हैं अथवा उनमें से कोई एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के धर्म को अपना ले और संबंधित धर्म के रीति-रिवाज़ों के तहत विवाह कर वे अपने विवाह का पंजीकरण करा सकते हैं।
- भारतीय संविधान के अनुच्छेद-25 के तहत धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया गया है। यह अनुच्छेद किसी भी व्यक्ति को भारत में किसी भी धर्म को मानने, उसके नियमों का पालन करने और उसका प्रचार करने का अधिकार प्रदान करता है।
- ऐसे में भारत में कोई भी व्यक्ति इस अनुच्छेद में प्राप्त अधिकार के तहत यदि अपनी स्वेच्छा से किसी व्यक्ति से विवाह करने के लिये अपना धर्म परिवर्तन करता है तो वह पूर्णतय: उसके अधिकारों के अधीन होगा।

विशेष विवाह अधिनियम (Special Marriage Act- SMA), 1954:

- भारत में सामाजिक और धार्मिक रूढ़िवादिता के कारण अंतरजातीय तथा अंतरधार्मिक विवाहों के लिये उत्पन्न होने वाली चुनौतियों को दूर करने के लिये वर्ष 1954 में 'विशेष विवाह अधिनियम को लागू किया गया था।

- यह अधिनियम वर्ष 1873 के विशेष विवाह अधिनियम को प्रतिस्थापित करता है।
- यह अधिनियम देश में अलग-अलग धर्मों से संबंधित लोगों को बगैर अपने धर्म में परिवर्तन किये ही विवाह पंजीकरण का अधिकार प्रदान करता है।
- यह अधिनियम विदेशों में रह रहे भारतीय नागरिकों पर भी लागू होता है।
- इस अधिनियम के तहत विवाह के पंजीकरण के लिये अधिनियम की धारा-4 में कुछ अनिवार्यताओं का निर्धारण किया गया है, जो निम्नलिखित हैं:
  - अधिनियम के तहत विवाह पंजीकरण के समय किसी भी पक्षकार का पति या पत्नी जीवित न हो।
  - कोई भी पक्ष मानसिक विकार के परिणामस्वरूप विधिमान्य सहमति देने में असमर्थ न हो।
  - या विवाह की सहमति तो दे सकता हो परंतु इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित न हो कि वह विवाह अथवा संतानोत्पत्ति के अयोग्य हो।
  - पुरुष की आयु 21 वर्ष (न्यूनतम) और महिला की आयु 18 वर्ष हो आदि।

विवाह के लिये धर्मांतरण का कारण:

- धर्मांतरण सामान्य स्थितियों और विवाह के मामलों में भी किसी व्यक्ति का व्यक्तिगत निर्णय हो सकता है परंतु कई कानूनी और सामाजिक बाध्यताओं के कारण अंतरधार्मिक विवाह के मामलों में लोग विवाह के लिये धर्मांतरण को अधिक प्राथमिकता देते हैं।

विशेष विवाह अधिनियम की चुनौतियाँ:

- इस अधिनियम की धारा-5 के तहत विवाह के लिये ज़िले के विवाह अधिकारी को नोटिस देना अनिवार्य है, जिसके बाद विवाह अधिकारी (Marriage Officer) द्वारा धारा-5 के तहत प्राप्त सभी नोटिसों को विवाह सूचना पुस्तक में दर्ज करने के साथ एक नोटिस बोर्ड पर चस्पा किया जाएगा जहाँ इसे किसी भी व्यक्ति द्वारा निशुल्क देखा जा सकता है। साथ ही यदि कोई भी पक्ष उस ज़िले का निवासी नहीं है तो इस नोटिस को संबंधित ज़िले के विवाह अधिकारी को भेजा जाएगा।
- इस नोटिस के जारी होने के 30 दिनों के अंदर कोई भी व्यक्ति धारा-4 के तहत निर्धारित शर्तों के उल्लंघन के आधार पर इस विवाह को लेकर अपना आक्षेप व्यक्त कर सकता है।
- आक्षेप की लिखित जानकारी मिलने के बाद विवाह अधिकारी को 30 दिनों के अंदर जाँच कर अपना निर्णय देना होता है। साथ ही विवाह अधिकारी के निर्णय से असंतुष्ट रहने पर व्यक्ति ज़िला न्यायालय में याचिका दायर कर सकता है।
- हालाँकि इस प्रक्रिया में लगने वाले समय के दौरान अंतरजातीय या अंतरधार्मिक विवाह के मामलों में लोगों पर परिवार अथवा समाज से अनावश्यक दबाव बढ़ जाता है।
- कई मामलों में लड़के या लड़की को इस प्रकार के विवाह से रोकने के लिये उन पर जानलेवा हमला भी कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ मामलों में कई असामाजिक तत्त्व लोगों की सार्वजनिक जानकारी का गलत फायदा उठाकर उन्हें या उनके परिवार को परेशान करने का प्रयास करते हैं।
- हाल ही में केरल में विशेष विवाह अधिनियम के तहत अंतरधार्मिक जोड़ों की तस्वीरों और अन्य जानकारियों के दुरुपयोग के मामले सामने आने के बाद सरकार ने इस अधिनियम के तहत विवाह के नोटिस के ऑनलाइन प्रकाशन पर रोक लगा दी थी।
- इन सब चुनौतियों से बचने के लिये अधिकांशत: लोग धर्म परिवर्तन का विकल्प अपनाते हैं।
- हाल ही में दिल्ली उच्च न्यायालय में दायर एक याचिका में SMA के तहत 30 दिन के नोटिस की अनिवार्यता को समाप्त करने की मांग की गई, इसके लिये तर्क दिया गया कि SMA की धारा-4 की शर्तों को शपथ पत्र और चिकित्सीय जाँच के माध्यम से भी पूरा किया जा सकता है।

अंतरधार्मिक विवाह का विरोध:

- कुछ संगठनों का आरोप है कि अंतरधार्मिक विवाहों के माध्यम से ज़बरन धर्म परिवर्तन कराने का प्रयास किया जाता है।
- 'हिंदू विवाह अधिनियम, 1955' या अन्य कुछ धर्मों के कानूनों के तहत किसी भी व्यक्ति को एक ही विवाह की अनुमति दी गई है, ऐसे में कुछ मामलों में लोगों ने दूसरा विवाह करने के लिये धर्मांतरण (विशेषकर इस्लाम जहाँ 4 विवाह तक की अनुमति है) का रास्ता अपनाया।

- गौरतलब है कि इस्लाम धर्म के रीति रिवाज़ों के तहत एक से अधिक विवाह के मामले में भारतीय दंड संहिता (IPC) की धारा-494 के प्रावधान लागू नहीं होते हैं।

पूर्व के मामले:

- सरला मुद्गल (1995): वर्ष 1995 में कल्याणी नामक एक संस्था की संचालक सरला मुद्गल द्वारा दायर एक याचिका की सुनवाई करते हुए उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया था कि कोई भी हिंदू बिना अपने पहले विवाह से तलाक की कार्रवाई को पूरा किये इस्लाम में धर्मांतरण के माध्यम से दूसरा विवाह नहीं कर सकता है और ऐसा करना IPC की धारा 494 के तहत दंडनीय होगा।

राज्य सरकारों द्वारा धर्मांतरण विरोधी कानूनों का प्रस्ताव:

- हाल में हरियाणा राज्य के गृहमंत्री द्वारा धर्मांतरण के विरुद्ध कानून के निर्माण की घोषणा के साथ हिमाचल प्रदेश में इस मामले पर पहले से सक्रिय एक कानून की जानकारी मांगी गई है। गौरतलब है कि वर्ष 2019 में हिमाचल विधानसभा द्वारा 'धार्मिक स्वतंत्रता विधेयक, 2019' पारित किया गया था।
- हिमाचल प्रदेश में वर्ष 2007 से ही एक कानून लागू था जिसके तहत बलपूर्वक या धोखाधड़ी से होने वाले धर्मांतरण पर रोक लगाई गई थी, हालाँकि वर्ष 2019 के विधेयक में इसके प्रावधानों को और अधिक कठोर कर दिया गया है।
- वर्ष 2019 के विधेयक के अनुसार, कोई भी व्यक्ति बल, अनुचित प्रभाव, प्रलोभन, धोखे या विवाह के माध्यम से किसी दूसरे व्यक्ति का धर्मांतरण कराने का प्रयास तथा ऐसे कार्यों में सहयोग नहीं करेगा।
- इस विधेयक के अनुसार, सिर्फ धर्मांतरण के उद्देश्य से किये गए विवाह को किसी भी पक्ष के आवेदन पर न्यायालय द्वारा अमान्य घोषित किया जा सकता है।
- यदि कोई व्यक्ति विवाह के लिये स्वेच्छा से धर्मांतरण करना चाहता है, तो उसे एक माह पहले ही इसके लिये आवेदन देना होगा, साथ ही धर्मांतरण में शामिल धर्मगुरु को भी इसकी सूचना एक माह पहले ही ज़िला प्रशासन को देनी होगी।
- इसके तहत अपराध संज्ञेय और गैर-जमानती होंगे और इसके प्रावधानों का उल्लंघन करने वालों को जुर्माने के साथ 5 वर्ष तक के कारावास का दंड दिया जा सकता है, यदि पीड़ित एक नाबालिग, महिला या अनुसूचित जाति या जनजाति का सदस्य है तो उस स्थिति में कारावास के दंड को 7 वर्षों तक बढ़ाया जा सकता है।

चुनौतियाँ:

- किन्हीं दो सहमत वयस्कों के बीच वैवाहिक संबंधों को विनियमित करने के लिये अनावश्यक कानूनी हस्तक्षेप न केवल संवैधानिक अधिकारों की गारंटी के खिलाफ होगा, बल्कि यह व्यक्तिगत (अनुच्छेद 21) और बुनियादी स्वतंत्रता की अवधारणा को भी क्षति पहुँचाता है।
- बहुविवाह, बहुपत्नी प्रथा, अपहरण या बल प्रयोग आदि को पहले से ही अपराध माना गया गई और ऐसे अपराधों से IPC या अन्य कानूनों की विभिन्न धाराओं के तहत निपटा जा सकता है।
- असामाजिक तत्त्वों द्वारा लोगों का शोषण करने या अराजकता फैलाने के लिये ऐसे कानूनों का दुरुपयोग किया जा सकता है।

आगे की राह:

- 21वीं सदी में भी देश में धर्म और जाति के नाम पर होने वाला भेदभाव एक बड़ी चिंता का विषय है, ऐसे में वर्तमान में समाज में लोगों में निजता तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता (विवाह, धर्म का चुनाव या अन्य मामलों में भी) के संदर्भ में व्यापक जागरूकता लाने की आवश्यकता है।
- विवाह अधिनियम से जुड़े कानूनों में अपेक्षित बदलाव के साथ और उन्हें लागू करने में होने वाली अनावश्यक देरी को दूर करने के विकल्पों पर विचार किया जाना चाहिये।
- कानूनों या धार्मिक रीति-रिवाज़ों के दुरुपयोग के माध्यम से लोगों के शोषण को रोकने के लिये युवाओं को उनके अधिकारों के बारे में जागरूक किया जाना चाहिये।
- भारत में विवाह से जुड़े कानूनों में व्याप्त जटिलता को दूर करने के लिये 'समान नागरिक संहिता' को अपनाया जाना बहुत ही आवश्यक है।

नोट :